इड़ा गायत्री

श्याम नन्दन किशोर

इड़ा-गायत्री

[शब्द-साधकों की आराध्या सरस्वती पर
नयी शैली का महाकाव्य]

डॉ० श्यामनन्दन किशोर

प्रथम संस्करण : १९८२

मूल्य
राज संस्करण —अस्सी रुपये
साधारण संस्करण—चालीस रुपये

प्रकाशक :
अरुणिमा
कलमबाग रोड, मुजफ्फरपुर

मुद्रक :
बिहार विश्वविद्यालय प्रेस,
मुजफ्फरपुर

अपनी पत्नी आशा; पुत्र अमिताभ राजन,
पुत्रवधू कविता राजन और
पुत्री अनामिका के लिए;
जिनपर सरस्वती माँ
की अति विशिष्ट
कृपा रही है।
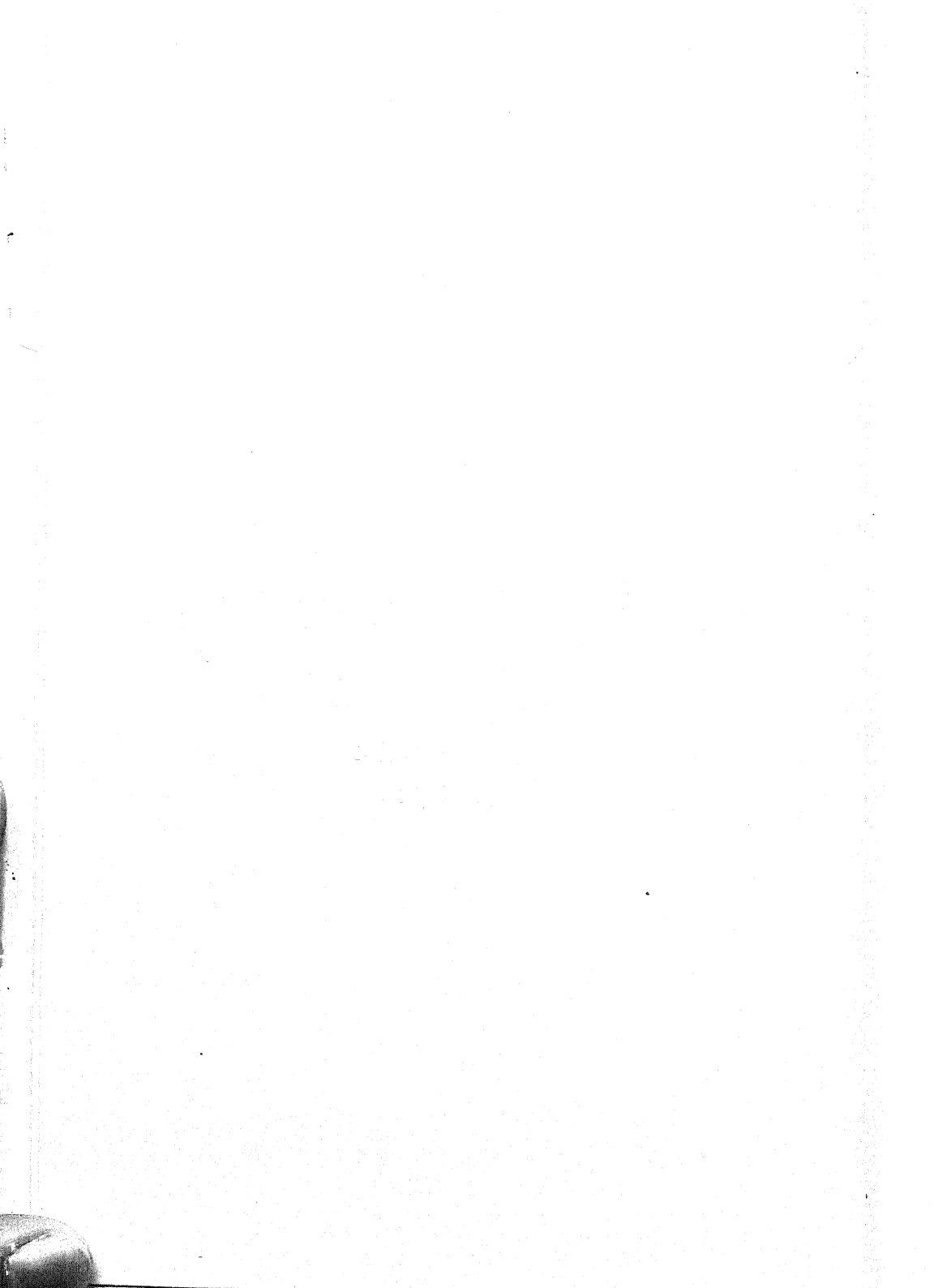
प्रणति

जो मौन को मुखर करे, निराकार भावों को शब्दों का आकार दे, शब्दों को पिरोकर अभिव्यक्ति की माला तैयार करे, जो लौकिक को अलौकिक दृष्टि दे, अलौकिक को लोकोद्धारक स्वरूप प्रदान करे, जो क्षर को अक्षर और अक्षर को मंत्र-सिद्धि दे, उसे कौन साधक चित्रित कर सकता है !

सभी बड़ी नदियों ने अपने को प्रकट रखा, एक सरस्वती ही क्यों अन्त:सलिला हो गई ? क्या सबको प्रकट करनेवाली वाणी माँ ने अपने को अप्रकट रखकर कवियों-लेखकों को कोई संकेत नहीं दिया ? क्या उसने यह नहीं कहना चाहा कि साधना की ऊँचाई कला में आत्म-विसर्जन करने में है ?

साहित्यकार का अहम् उसकी कृतियों में घुल मिल जाय, उदात्त हो जाय, तो तपस्या पूर्ण होती है। उसका पूर्ण स्वरूप दिखने-दिखाने में नहीं अपनी कृतियों में लीन हो जाने में हैं।

मेरे पिताजी ने मुझे सरस्वती के दो मंत्र शैशव में दिये थे और कहा था कि प्रतिदिन स्नान-ध्यान कर सरस्वती-मंत्र का जाप करने से उनकी कृपा प्राप्त होती है। वे यह भी बतलाते थे कि ब्राह्म मुहूर्त्त में वीणापाणि घूमती रहती हैं और जो छात्र उस समय उन्हें पढ़ता नजर आता है उसकी जिह्वा में वे समा जाती हैं। तब से मेरा भाव-प्रवण मन ब्राह्म मुहूर्त्त में उठकर पढ़ता-लिखता रहा, जो आज आदत-सी बन गई है माँ सरस्वती की मुझपर कितनी कृपा हुई, यह तो समय बताएगा, लेकिन मेरे समस्त परिवार पर उनकी जो अद्भुत अनुकम्पा है, मैं इसे भूल नहीं पाता !

[दो]

सरस्वती माँ पर एक महाकाव्य लिखने के लिए मैंने सन् '५३ में ही प्रयास किया था, लेकिन तब से आजतक उनके सम्बन्ध में प्राप्त सामग्रियों के लिए मैं भटकता ही रहा। मैंने देश की सभी भाषाओं के विद्वानों से सम्पर्क स्थापित किया और स्वयं जितना अध्ययन कर सकता था, किया। विदेशी साहित्य में ज्ञान और बुद्धि की देवी के सम्बन्ध में भी अन्वेषण किया। आश्चर्य है कि जिस माँ सरस्वती ने विश्व की हर भाषा में, हर काल में एक से एक अमर कवि पैदा किये, उसपर कोई उल्लेखनीय महाकाव्य नहीं मिला। एक से एक श्रेष्ठ वाणी-वंदना से सम्बद्ध श्लोक और पद मिले, लेकिन सबको वाणी देनेवाली ने अपने को प्रबन्ध रूप में प्रकट नहीं ही होने दिया।

इड़ा-गायत्री के माध्यम से मैंने जो संदेश देना चाहा है, माँ शारदा का जो रूप आँकना चाहा है, विश्व के कल्याण के लिए बुद्धि और भाव के संतुलन की जो आवश्यकता अनुभव की है; वह सब सांकेतिक है। यह महाकाव्य अपना निकष आप है। मैंने इसमें जो शिल्पगत प्रयोग किये हैं, उन्हें प्रतीकात्मक कथ्य मानना चाहिए। सरस्वती के कुछ कृपा-पात्रों का वर्णन भी उदाहरणार्थ ही है।

माँ सरस्वती पर रचित इस महाकाव्य के प्रणयन में 'ज्ञानिनाम्-अग्रगण्य' ने ही मेरी सहायता की है!

असफलताएँ मेरी और सफलताएँ उनकी!

अनिकेत,
मुजफ्फरपुर
१७-८-८२

मंत्र-सरणि

प्रेरणा

उपवन ने दे पुष्प अछूते
देवों का शृंगार किया;
मनुज-प्रिया के जूड़े को भी
विभावरी-सा हार दिया ।

किन्तु किसी ने क्या फूलों से
फूलों का अभिषेक किया ?
धूलों को आँधी ! लेकिन,
कितनों को भावोद्रेक हुआ ?

तुमसे मांगूँ शब्द, भाव,
कुछ गूँज बनें, कुछ छन्द बनें !
कुछ सफल बनें अभिव्यक्ति
और कुछ सकुचा अन्तर्द्वन्द्व बनें !

× × ×

माँ से माँगे कुछ पुत्र,
दान की गरिमा लुट जाती है
साँसें अपनापन की ज्यों
लज्जा से घुट जाती हैं ।

× × ×

जो निर्माता है, उससे
निर्माण भिन्न क्या ?
जो जीवित, उससे उसका
मुख-भाग छिन्न क्या ?

वाणी—माँ की सबने
केवल यादें की हैं !
काव्य—सिद्धि के लिए
सहज फरियादें की हैं !

आदि महाकवि, व्यास या कि
वे कालिदास हों,
या कि समन्वयवादी
तुलसी रामदास हों,

हों रवीन्द्र या गुप्त, निराला
कितने गीतिकार ने तुमपर,
फुटकर छन्द लिखे पूजा के,
रचो न लेकिन पोथी भास्वर !

तुम महाकाव्य की रही प्रेरणा,
विषय नहीं !
तुम दसों दिशा में व्याप्त रहीं,
दिग्विजय नहीं !

तुम रहीं हार की डोर,
मगर पाटल, न जुही !
तुम नहीं कुमुदिनी
और नहीं तुम सुरुजमुही !

तुम सबको दे आसक्ति,
स्वयं हो अनासक्त !
तुम स्वयं मौन रह,
सबको करती रही व्यक्त !

तुम शब्द निखिल,
हो स्वर अनन्त !
प्रस्फुटन सकल बाहर-भीतर
जीवन-पर्यन्त !

तुम पर कुछ जो लिखूँ
बहुत सकुचाओगी तुम !
बहुत बुलाने पर भी
कभी न आओगी तुम !

इसीलिए जो ज्ञानिजनों में
अग्रगण्य है,
सकल प्रेरणा उसकी ही है
वही धन्य है !

× × ×

पवनसुत देंगे मुझको ज्ञान
बुद्धि दे देंगे श्री विघ्नेश।
तुम्हारी पुस्तक देगी तत्व,
तुम्हारी वीणा छन्द अशेष।

अश्रु से धोये हैं जो चरण,
अन्तरा का होंगे अभिषेक।
मुख-कमल वर्षों से जो दिखे
बनेंगे वही हमारी टेक।

भाव में खोकर मेरी बुद्धि
नहीं रह पायेगी यदि नेक।
तुम्हारे पास तैरता हुआ
हंस, दे देगा मुझे विवेक।

रहो अंतः सलिला या प्रकट,
रहो तुम दूर, या कि कुछ निकट,
प्रलय में डूब न पायेगा
हमारी कृति का अक्षयवट।

●

विधाता

स्रष्टा से होती है अभिन्न सृष्टि
कि जैसे जलज सरोवर से
अलग रहे पर व्याकुल कुम्हला जाये,
साथ रहे पर धीरे विकसे !

स्रष्टा से होती विमुक्त है सृष्टि
कि जैसे गन्ध सुमन-दल से ।
दूर-दूर तक जो कि सुयश-सी जाती
पृथक लिये व्यक्तित्व आत्म-बल से ।

स्रष्टा का सृष्टि से होता सम्बन्ध क्या ?
है वह पिता क्योंकि जन्म उसे देता है !
होती सहधर्मिणी भी रचना रचयिता की,
सुख-दुख में वही उसे आत्मतोष देती है ।

पाता रचयिता रस रचना से अपनी है,
कोमल सम्बन्ध यह त्यागा नहीं जा सकता ।
अपनी ही रचना पर आप मुग्ध हो जाना,
यह भी स्वाभाविक है, कवि-लेखक जानते हैं ।

रचनाएँ मानस-सन्तान हुआ करती हैं,
होते सम्बन्ध भी मानसिक और हार्दिक हैं !
दैहिक सम्बन्धों का इन पर न बन्धन है
भाव-भूमि ही केवल इनका लीला-क्षेत्र है !

हे विधाता ! विश्व ने समझा न तेरा मोल
केकड़े की माँ—गयी खा तुझे तेरी सृष्टि !
रचे पल-छिन यों तूने प्राणी तो अनगिन हैं,
रहा लेकिन स्वयं तू तो मौन और एकाकी ।

कौन रचनाकार अपनी सृष्टि पर होता नहीं है मुग्ध
एक जो तूही बना अपवाद !
है किसे अपनी न वाणी प्रिय,
श्रेष्ठ कृति पर है किसे होता नहीं आह्लाद !

सभी कवि संसार में जाते विधाता कहे
कर रही सबको सरस वाणी ।
क्या भला आश्चर्य यदि तुझको
कर गयी रस-सिद्ध कल्याणी !

मुग्ध अपने आप पर होते रहे हैं हम,
सृष्टि पर होना नहीं है पाप।
चाँदनी की शीत किरणें भी
सूर्य का उद्दीप्त ही है ताप।

●

रचना होती मानस-पुत्री
नहीं देह की बेटी !
उसका पावन संग सूक्ष्म है
नहीं स्वेद से भारी !

लोकातीत रमण उसका है,
एकाकिनी शयन उसका है !
वह केवल है भाव,
न नर या नारी !

अपनी वाणी पर कौन नहीं
विस्मय विमुग्ध ?
वह भी जो पहली बार
राग बन फूटी ही !

कवियों के पुरखे वाल्मीकि
क्या नहीं हिले ?
जो पहली बार हुए थे
स्रष्टा वाणी के ?

क्या नहीं हुए थे भाव-मुग्ध ?
क्या नहीं छन्द में गाया था ?
क्या नहीं यौन खण्डित उनमें
सावन बनकर लहराया था ?

कहता वियोग को कौन प्रथम
कविता इस धरती की ?
यह असफल यौन-प्रयास
प्रथम बन फूटा छन्द महान !

कभी विधाता पर तो सोचा
होता सही दिशा में,
फिर से पढ़कर देखा होता
बाँधा हुआ पुराण ।

●

अभिव्यक्ति

नहीं नाचती धरती
तारे गाते नहीं गगन में !
नदियों में उठती न तरंगें,
विहग न गाते वन में !

रुदन न बनता गीत,
हास से फूल न झड़ते !
कुछ लय ताल नहीं
सुर चढ़ते वीणा के कम्पन में !

बंशी हरि की, हरित वेणु की
रह जाती बस बेटी !
नहीं राम के धनुष-वाण में
आ पाती टंकार !

मीरा का करताल न बजता
और रबाब न उसका,
संतों को न सुनायी पड़ती
अनहद की झंकार !

शब्द न होते, ध्वनि न निकलती,
सृष्टि मौन हो जाती !
मूक, बधिर हम एक दूसरे का
मुख देखा करते !

अपने भीतर की बेचैनी
सुख-दुख में जो होती,
उसकी घुटन हमें तड़पाती
—जीते जी हम मरते !

जो अभिव्यक्ति न होती
तो हम रह जाते संकेत !
मुखर न होने की पीड़ा है
सर्प-दंश से भारी !

कुछ न सुनायी पड़े, कष्ट है,
संकट बहुत बड़ा है !
उससे कठिन नहीं कुछ कहने
की होती लाचारी !

—यह सब कछ हो जाता
यदि होती माँ वाणी नहीं
और न उसकी वीणा से
झंकार निकलती होती !

यदि उसकी पुस्तक से
आठों याम विश्व कण-कण में
नहीं ज्ञान, अक्षर अशेष
की सुधा निकलती होती !

वागेश्वरी ! तुम्हारी वीणा का लय-ताल समाज !
वाङ्मयी ! तुम ही धरती पर ज्ञान और विज्ञान !
सरस्वती ! तुम सभी रसों की धार बहाने वाली !
ब्रह्मचारिणी ! सकल साधना का तुममें उत्थान !

●

अन्तरंग
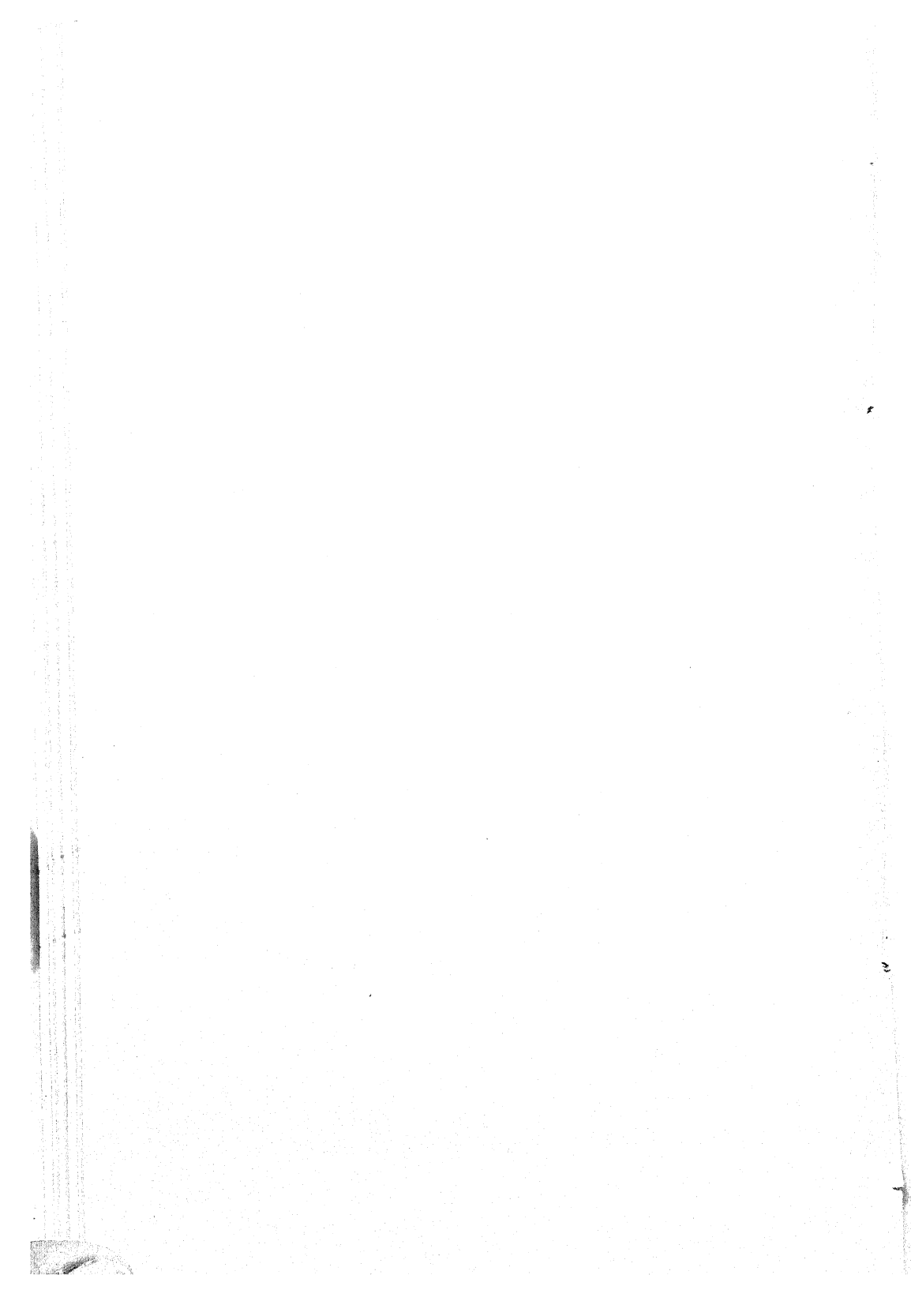
ये तिरस्कार! ये पुरस्कार!
—दोनों ही माता के दुलार!

दोनों मिलते हैं अकस्मात!
दोनों लाते हैं अश्रुपात!

दोनों में साँसों का चढ़ाव!
दोनों में साँसों का उतार!

ये तिरस्कार मरु की ज्वाला,
जो रचती मेघ-खण्ड-माला!

ये तिरस्कार तीव्रानुभूति—
रचती ज्वलन्त साहित्यकार!

ये पुरस्कार कण्टकाकीर्ण,
साधना बनाते जरा-जीर्ण!

दो चार बढ़ाते आलोचक.
दो चार बनाते समाचार!

ये तिरस्कार ये पुरस्कार!
दोनों ही माता की पुकार!

दोनों में झंकृत होता है
माँ की वीणा का तार-तार!

माँ शारदे, कुछ दे न दे,
लेकिन सही यह बात है—

जो एक वीणा बज उठी, झंकार बन मैं खो गया!

जो खो गया उसका अलग
अस्तित्व भी कैसा रहा!

उसको पता तट का नहीं
जो मूल धारा में बहा!

सुन्दर-असुन्दर क्या भला, उसके लिए जो सो गया!

कुछ भी गिला चिन्ता नहीं,
कुछ दे न दे बस दृष्टि दे!

भौतिक जगत में तुच्छ रख
शब्दावली में सृष्टि दे!

तू लहलहाने दे उसे, जो बीज तेरे बो गया!

इतना पता मुझको रहा
मुझसे नहीं सम्बन्ध कुछ !
पैदा हुआ संसार में
इतना अधिक मैं मंद कुछ !

— लेकिन सभी हैं जानते, मैं एक तेरा हो गया !

माँ शारदे, कुछ दे न दे !
लेकिन सही यह बात है—

जो एक वीणा बज उठी, झंकार बन मैं खो गया !

●

सृष्टि
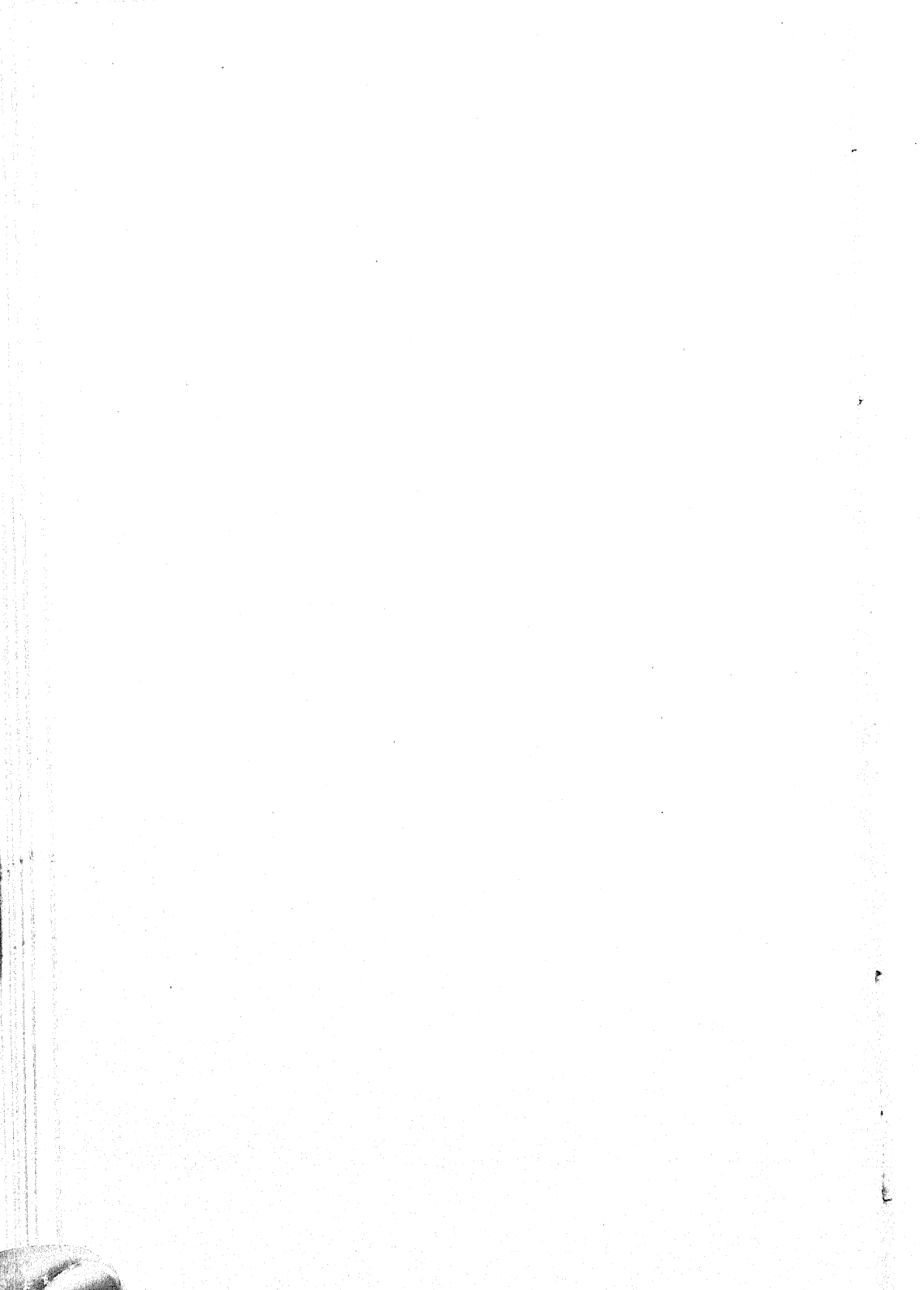
माँ ! नारद से वीणा ले लो !
उनका नहीं प्रमाद मिटा !
उस ज्ञानी से पुस्तक ले लो,
जिसका नहीं विषाद मिटा !

कृपा तुम्हारी कर देती है जीवन को निर्द्वन्द्व !
वीणा-पुस्तक से मिलता है बस केवल आनन्द !

●

निर्द्वन्द्व
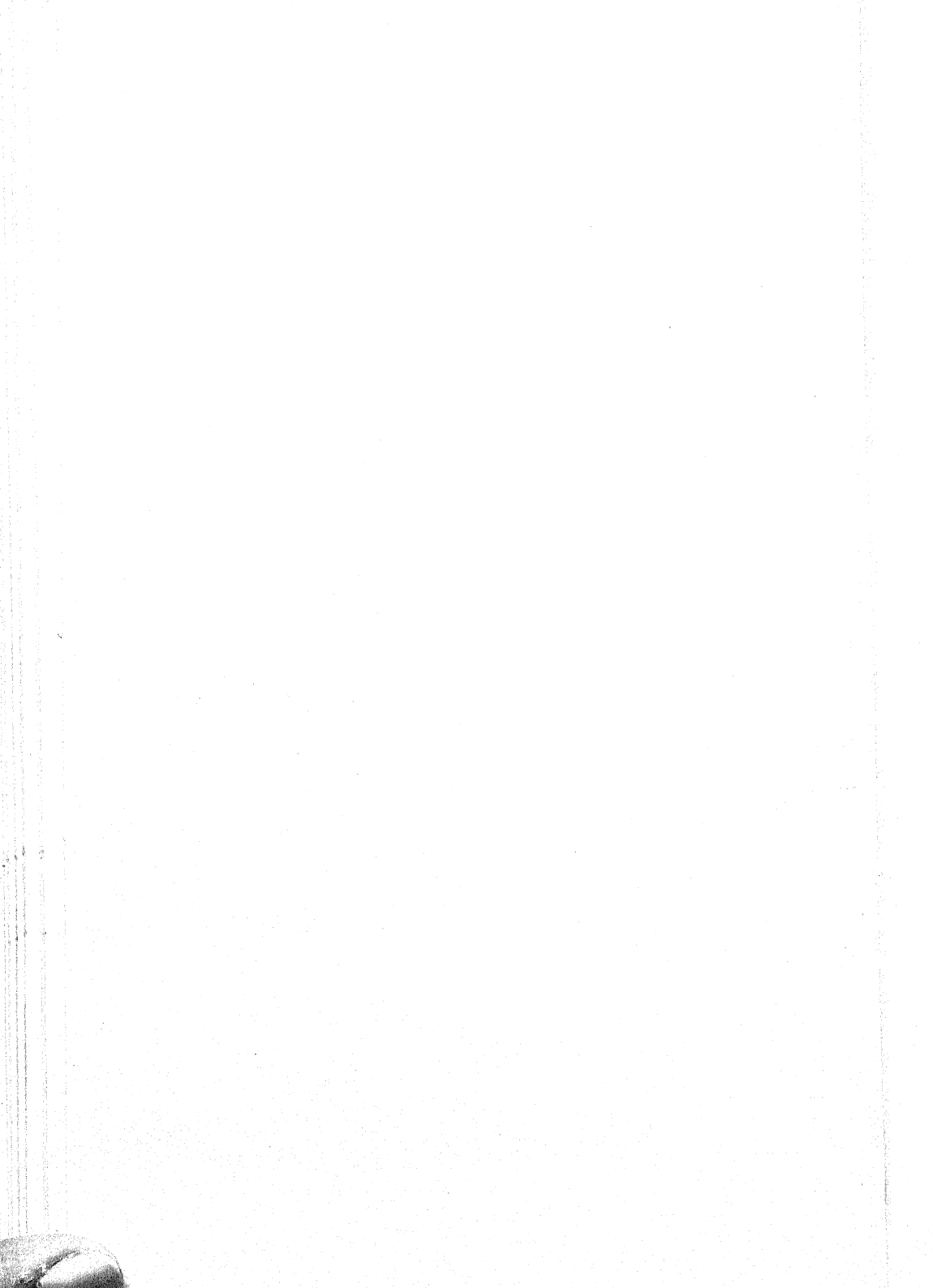
तुम छोटी थी, तुम्हें याद है
जब तुतले थे बैन !
चन्द्र-सूर्य की सृष्टि तुम्हारे
करते थे जब नैन !

उन्हीं दिनों सोयी थी
गहरी नींद रात को एक
किन्तु जागता था तुममें
जैसे सम्पूर्ण विवेक !

अधर बुदबुदाये कि
सृष्टि के तार गुदगुदाये ।
कम्पन से बनते शब्दों से
दिग्-दिगन्त लहराये !

विद्युत की लेखनी गगन ने
लिखी ऋचाएँ झूम !
तीनों लोक उन्हें फैलाया
पवन देव ने घूम !

बने उसी से वेद, उसी से सारे बने पुराण !
वाल्मीकि औ' व्यास उसी से कर पाये निर्माण !

●

रत्नाकर
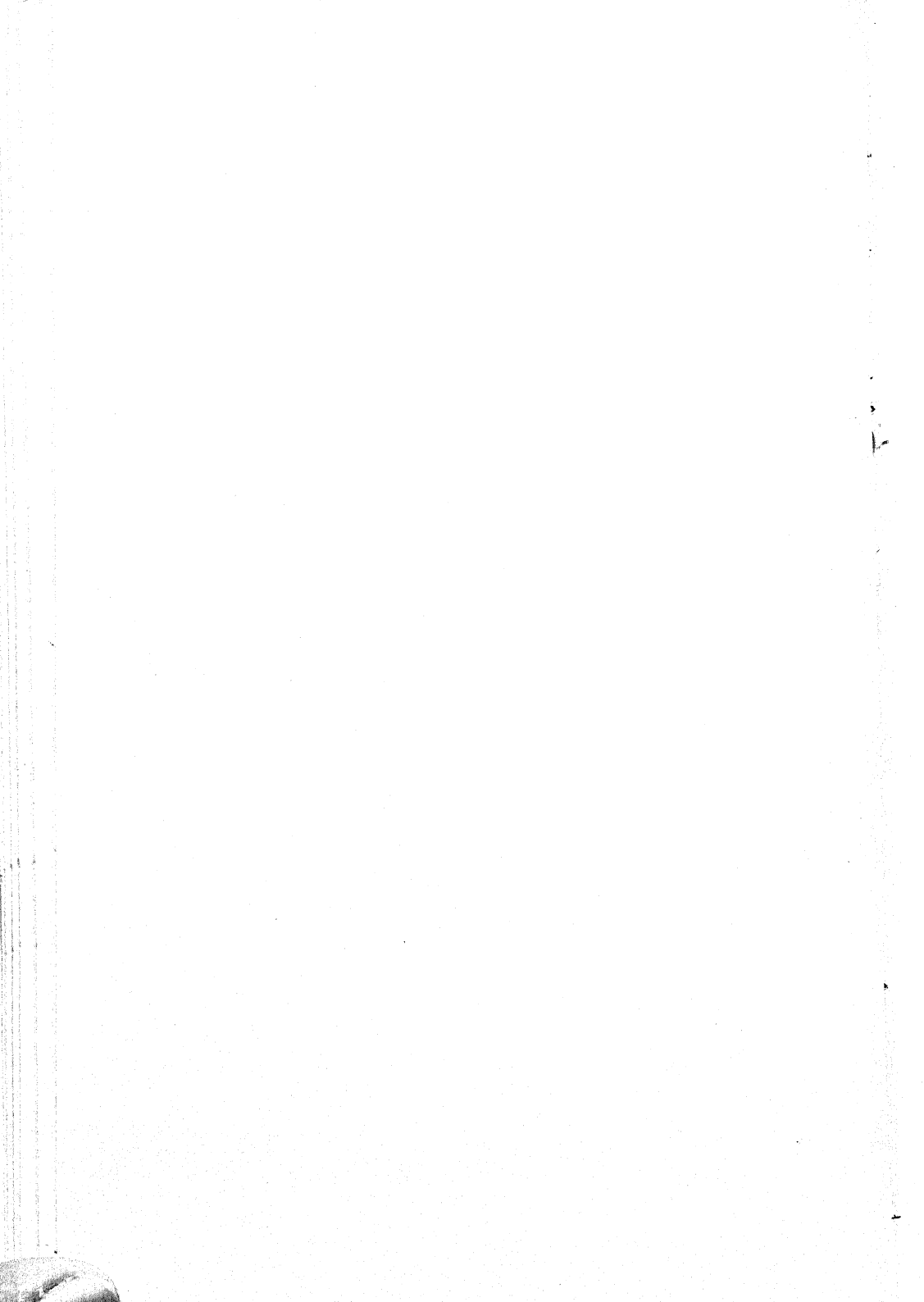
रत्नाकर डाकू हत्यारे
'मरा' - 'मरा' कर जाप,
धो पाये कर कठिन तपस्या
अपने सारे पाप !

लेकिन उसकी हत्याओं से
शब्द जो हुए मौन,
भिन्न प्राणियों के उस स्वर को
मुखर करे फिर कौन ?

नारद की वीणा से आयी
वाल्मीकि को याद
करने लगा शारदा माँ से
वह विनम्र फरियाद !

कहने लगा कि "उड़ते पंछी
और दौड़ते वनचर
लोकगीत को गानेवाले
कितने ही नारी - नर,

मेरे हाथ गए मारे, अब
याद सिर्फ चीत्कार !
चीत्कारों से कान गए भर
मन में हाहाकार !

कोई करो उपाय तुम्हारी
वीणा की झंकार
मेरे मन प्राणों में ले ले
माँ, कोई आकार।'

सर्वमंगला पिघल गयी
कुछ ऐसा किया विधान,
क्रौंच पक्षियों के माध्यम से
किया शीघ्र कल्याण !

निठुर हृदय में करुणा उपजी
गिरि से फूटा निर्झर !
माँ वाणी छन्दों में विकसी
शब्द हो गये भास्वर !

अनुपमेय
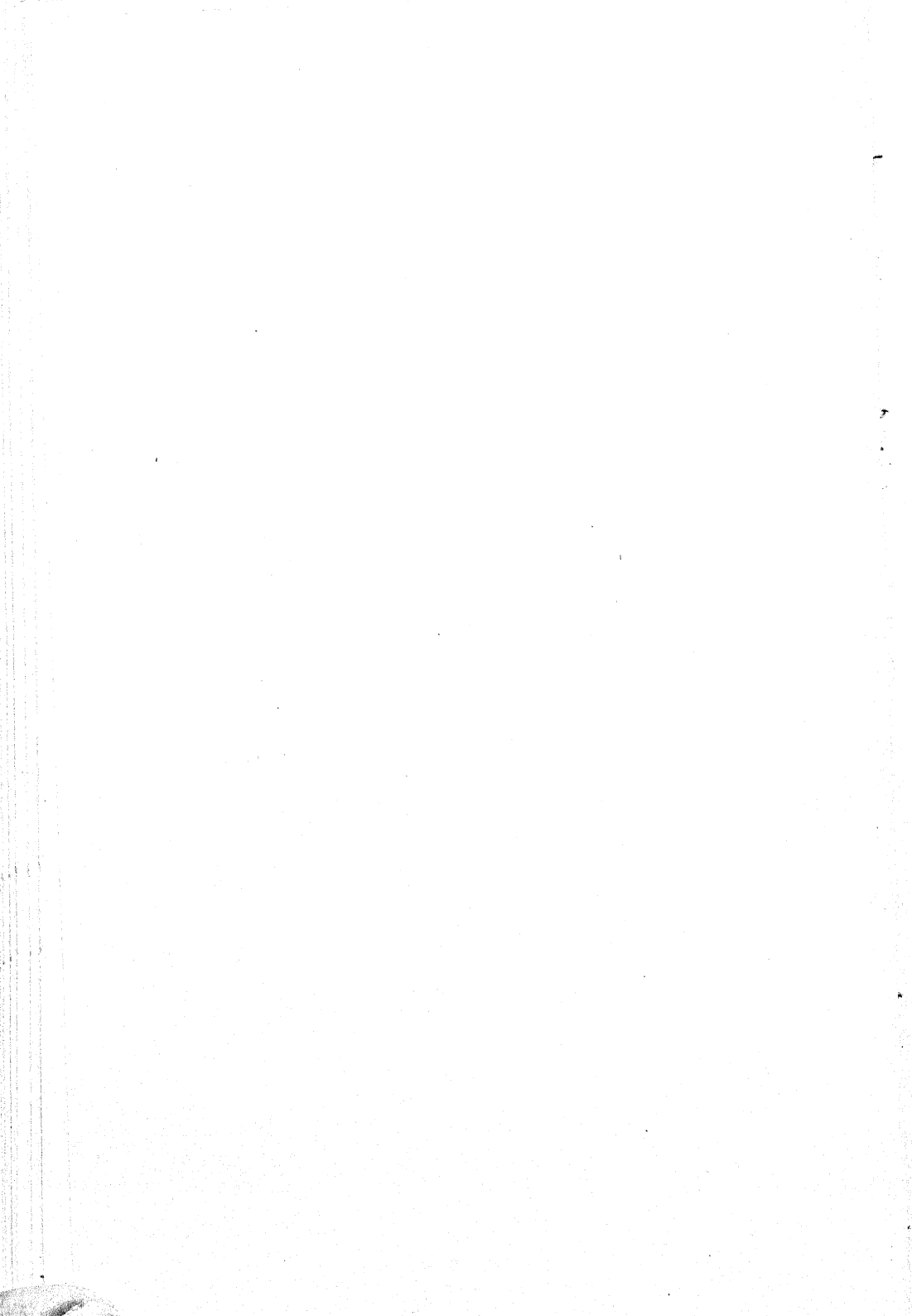
माँ वाणी है भाव, वही है शब्द
और शैली भी वह है !
सदियों पुरा विश्व की
वह तो कथा अकह है !

ध्यान धरे की रूपमती है,
वह विदेह है !
विश्व व्यापिनी-सूर्य चन्द्र है,
वही स्नेह है !

दोगे कान, सुनायी देगी
जग वीणा-झंकार !
दोगी दृष्टि, सृष्टि दीखेगी
तुम्हें पुस्तकाकार !

पुस्तक, वीणा, शब्द और ध्वनि
हंस ज्ञान का माध्यम !
मां की कृपा कि साधारण भी
बन जाता है अनुपम !

●

कालिदास
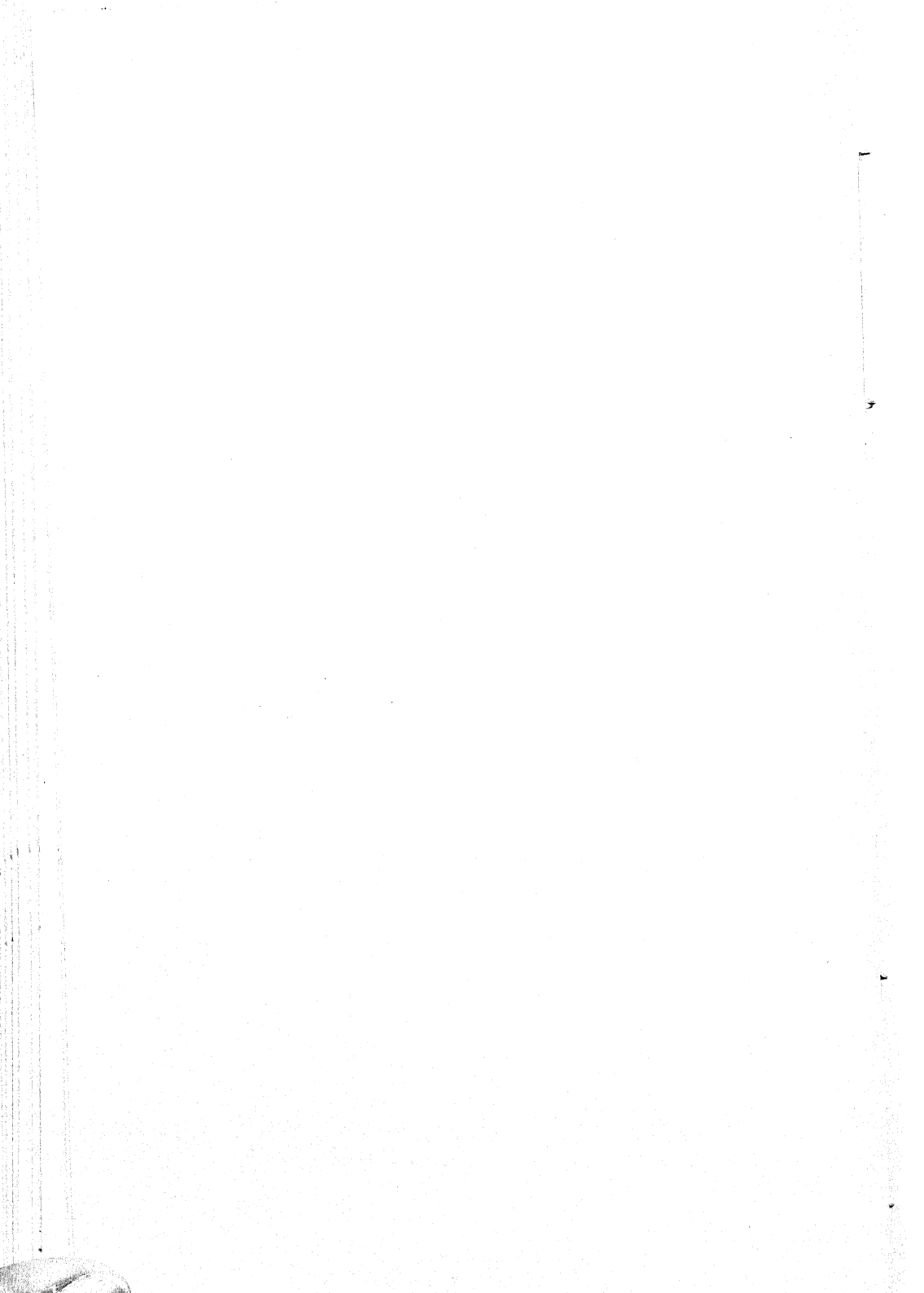
बैठा जिस डाली पर
उसे ही जो काटता है,
एक उँगली देखते ही
दो जो दिखाता है—

बदले में एक के,
फोड़ेगा दोनों आँखें
'द्वैत - अद्वैत' ? उपहास
जो कराता है,

वह भी वीणापाणि का
बनता है वरद पुत्र;
ऐसी दयालु जग—
जननी हमारी है !

मौर्ख्य दो, ज्ञान दो—जो भी दो, खूब दो !
तुम्हारी कृपा-भावना ये दोनों ही प्यारी है !

बोपदेव
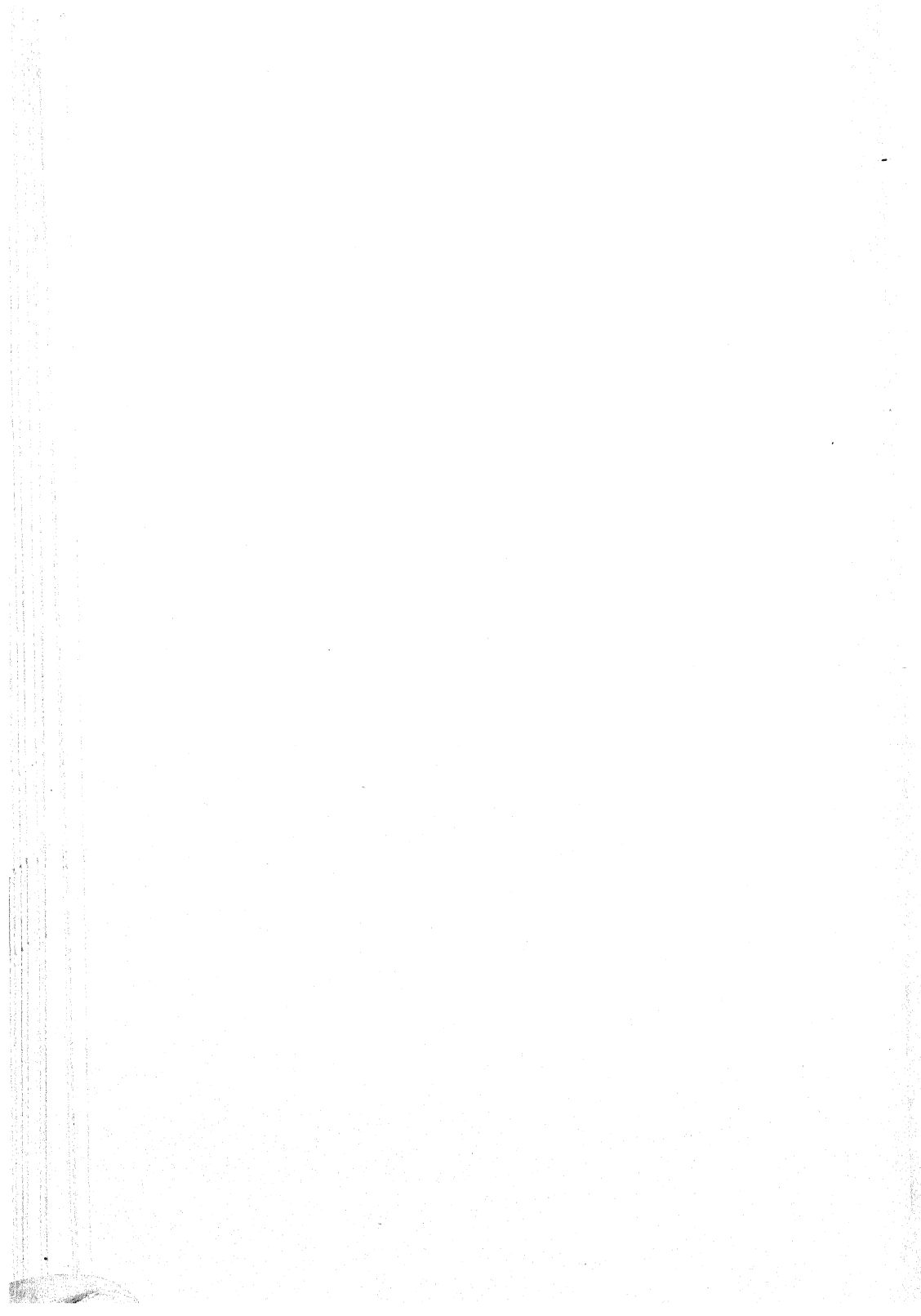
बोपदेव मिथिला के ब्राह्मण
बोदा लिये दिमाग,
शाला में जब हुए प्रताड़ित
गए गाँव से भाग !

भूख - प्यास से व्यथित
कुँआ के पहुँचे चबूतरे पर !
देखा मिट्टी के घट से ही
घिसा हुआ था पत्थर !

वीणापाणि कृपालु !
सिद्ध हो गयी कि विद्या माया,
वह प्रकाश को समझ गया,
जिसने पहचानी छाया !

सरस्वती की दया, पुस्तकों के
वे हुए विधायक,
वैयाकरण प्रसिद्ध
कुशल शब्दों के बन निर्णायक !

●

वाचस्पति
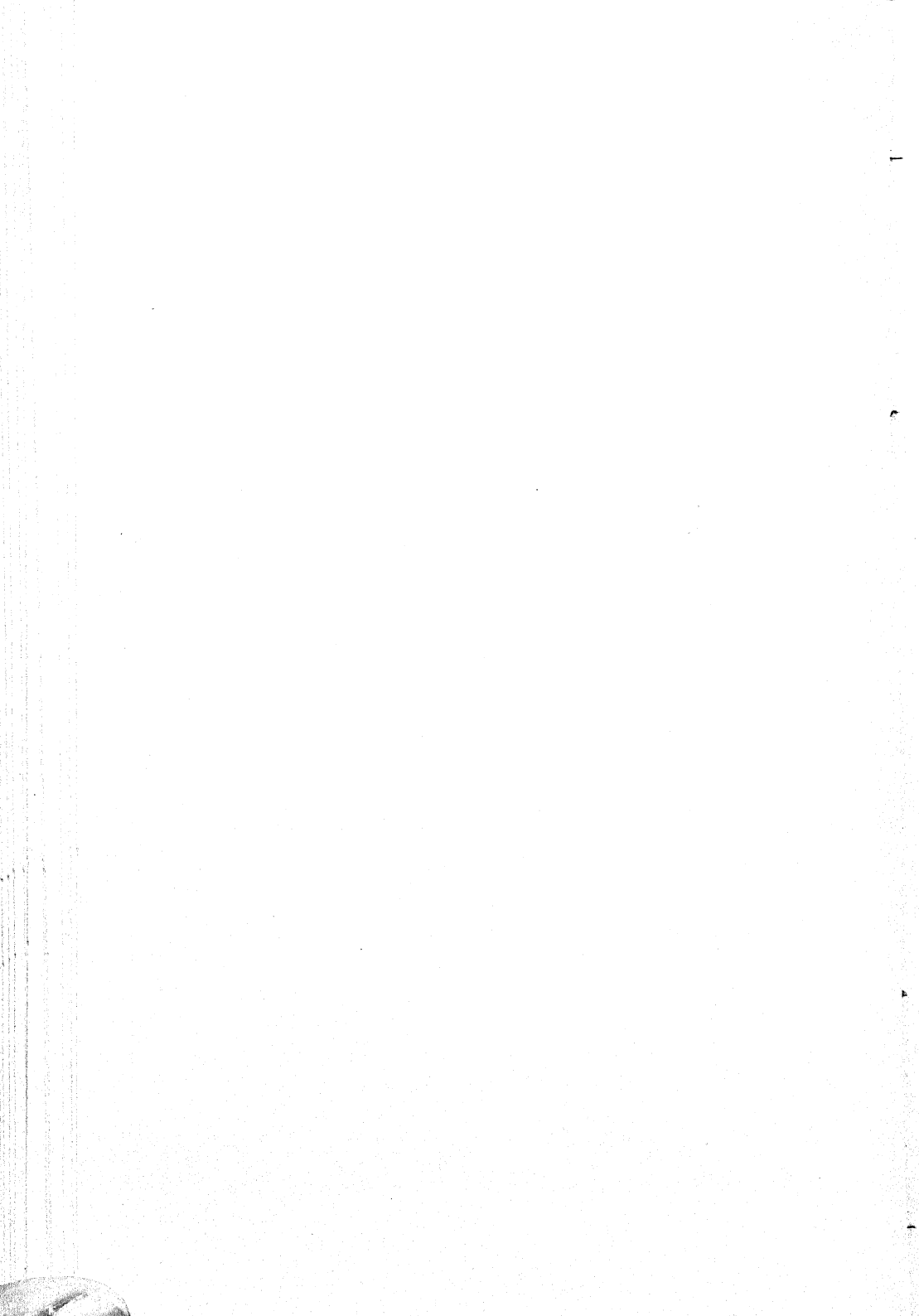
माँ तुम किस-किस रूप में
करती रही दया,
नहीं किसी कवि से कभी
यह सब कहा गया !

नैयायिक वाचस्पति ब्याह कर भामति से
करने अधूरे लगे ग्रन्थों को रचना;
हर शाम दीपक जलाकर रख जाती रही,
साहित्यकार बुनता रहा रोज-रोज सपना !

एक रोज पूरे हुए ग्रन्थ, दीप आया
आँखें उठाकर देखा, कौन इसे लाया !
'कौन हो तुम देवि, शुभे, सुन्दरी, श्वेतकेशी !'
'मैं हूँ देव तेरी ही, दीपक की छाया !'

माँ, वह क्या शक्ति है जो
साधना कर देती प्रखर,
इतनी जो केवल तू ही तू
दिखती - दिखाती है !

एक सम्बन्ध रह जाता
लेखनी से ही है
वही जाने क्या-क्या कुछ
लिखती-लिखाती है ।

पूरे व्यक्तित्व पर छाती सरस्वती !
आत्मा के भीतर है गाती सरस्वती !
सारे अन्धकार में जग के या जीवन के
देती प्रकाश, बन बाती सरस्वती !

●

कवि कृपार्त्त
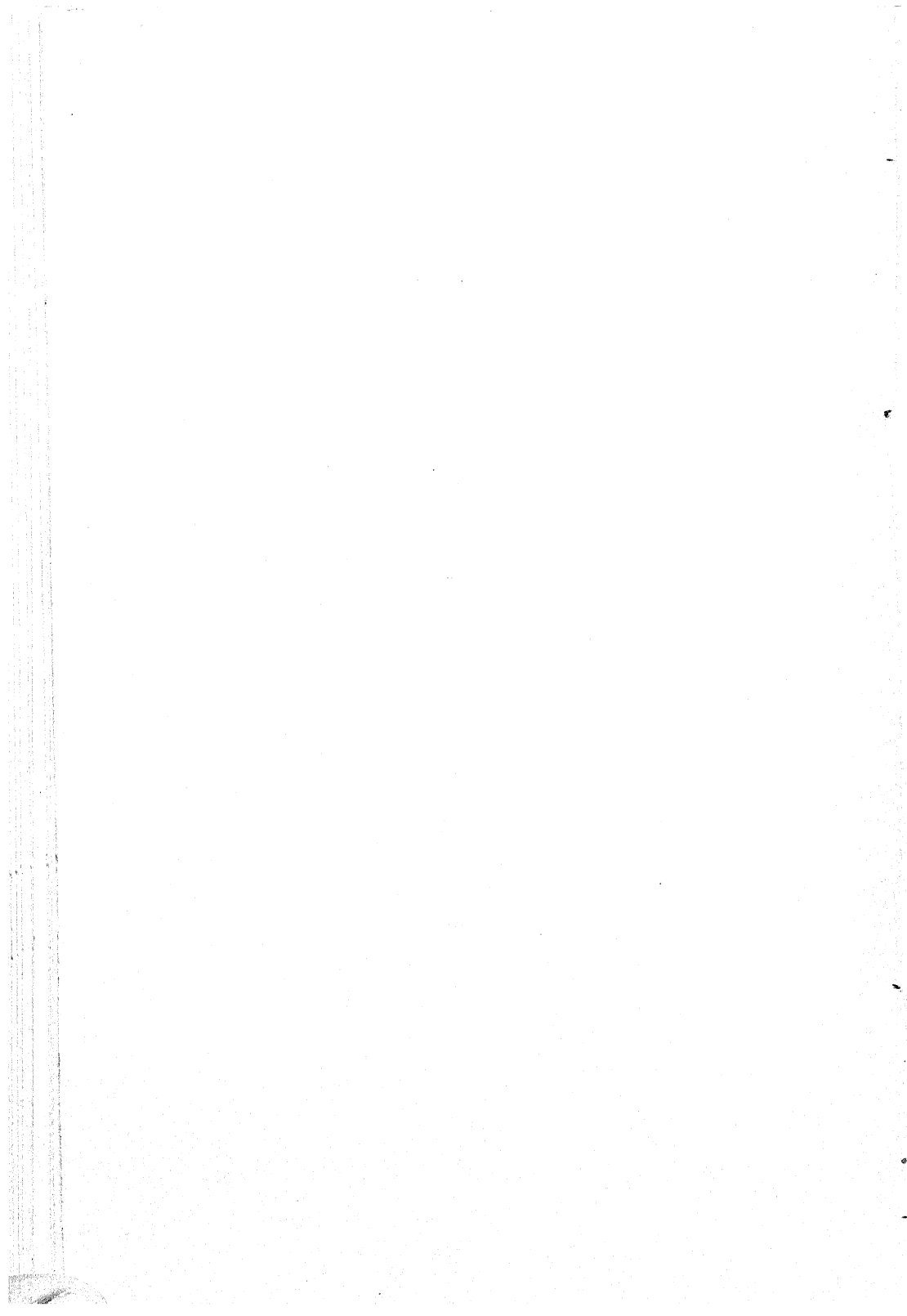
अन्धे सूर को जायसी कुरूप को
महाकवि बना दिया अनपढ़ कबीर को !
ज्ञानिनाम अग्रगण्य आपने बना दिया
धारे कपीश्वर का रूप महावीर को !

आदि शंकराचार्य को विद्या अनंत दी
वह भी अल्पायु में हे शुभ सिद्धिदायिनी !
भारतेन्दु, प्रसाद, कीट्स शेली सभी सिद्ध हुए
तुम्हारी कृपा से हे, सकलाशब्दरूपिणी !

तुम चाहो मूक को वाचाल अभी कर दो !
तुम चाहो मूढ़ को बना दो विद्वान अमर !
तुम चाहो एक दीपक लड़कर हो सकता जयी
सारे अज्ञान के अँधेरे का महासमर !

●

ग्नयाचो मिश्र

शारदा माँ स्वाभिमान
देती विद्वान को !
देती है तीक्ष्णधार
प्रतिभा को, ज्ञान को !

कर देती जग-जाहिर
कृपया अनजान को !
निर्धन बनाती है
किन्तु प्रतिभावान को !

ज्ञानी अयाची मिश्र शास्त्र-मंथन करते थे
कुछ गज की बाड़ी के शाक-पात खाकर !
यश से प्रभावित हो धन-धान्य देना चाहा
खुद ही नरेश ने उनके पास आकर !

इला के स्वाभिमानी पुत्र धन से विरक्त थे
फिर भी सम्राट ने कहा कि 'कुछलीजिए !'
अयाची ने कहा कि 'आप सामने खड़े न हों
जाड़े की धूप आप मुक्त छोड़ दीजिए !'

●

विद्या

विद्या-न्यायालय में आपाधापी मची कैसी
लगता मृगछौनों में घुस आया शेर है !
बिल्लियों को न्याय देने आया है बन्दर यहाँ
धाँधली मची है कैसी, कैसा अन्धेर है !

विद्यालय बन गये हैं व्यापारिक संस्थान
और विश्वविद्यालय में उनकी घुसपैठ है—
जिसको जितना है कम ज्ञान, उसकी ही
अधिक शान-बान, उसकी ही अधिक ऐंठ है !

उल्टा को सीधा, सीधा को उल्टा
आसानी से कर देते तथाकथित विद्वान !
न्याय के तराजू पर मेढ़क जा रहे हैं तोले !
आश्चर्य मुद्रा में ज़रूरत मन्द इन्सान !

माँ तेरे राज्य में कैसा अन्याय है
अच्छी प्रतिभाओं को गुट जाती लील हैं !
और यहाँ आँखों में धूल झोंकनेवाले
पीतल को करते सोने में तबदील हैं !

चाटुकार बनते जब ज्ञानी हैं मूर्खों के
तेरे ललाट पर पसीना आ जाता है !
बुद्धिजीवी बुद्धि को रख जेब में जब चल देते,
तेरा बेचारा यह हस शरमाता है !

विद्या भी बिकती है, नीलाम होती है
कालेबाजारियों की ऊँची दूकानों पर !
बगुलों को हंस का प्रमाण-पत्र मिलता है !
प्रश्न–चिह्न लगता कितनों के ईमानों पर !

पक्षिराज-गरुड़ बनते श्रोता प्रवीण हैं,
सूरज पर अभिभाषण होता उलूक का !
संगीताचार्य चरणतले बैठे स्वर साधते हैं,
मंचों पर स्थान होता प्रायः बधिर-मूक का !

करते हैं न्याय-संगत कार्य जो यहां माता,
उनको पद–त्याग तक करना पड़ सकता है !
रखता है नीति जो कि 'खाओ-खिलाओ की'
क्या वसंत, पतझड़ में भी नहीं झड़ सकता है !

ईमानदार होने से दुश्मन बढ़ जाते हैं
छोड़ सारे मित्र धीरे से खिसक जाते हैं !
अपना मन निश्चय प्रसन्न बहुत रहता है,
थोड़े को आँखों में सम्मान पाते हैं !

श्वेतवसना माता, तू स्वयं तो है निष्कलंक,
कालिखपुते तेरे ये नकलीपूत कौन हैं ?
कैसा जमाना है, मूर्ख देते उपदेश
काँख में दबाये पोथी ज्ञानी यहाँ मौन हैं !

ऐसी बजा दे वीणा रसज्ञा, इसबार यहाँ
चर्म-चक्षु, मर्म-चक्षु दोनों ही खुल जायें !
स्वर की निर्झरिणी तू ऐसी बहा दे मां,
जग-युग में बहते ये सकल कलुष धुल जायें !

●

राजनीति

राजनीति में मित्र, कठिन है;
स्व से उठा चरित्र; कठिन है,
किसी जुआड़ी के अड्डे पर
वातावरण पवित्र, कठिन है !

●

राजनीति में मित्र, कठिन है,
स्व से उठा चरित्र: कठिन है,
किसी जुआड़ी के अड्डे पर
वातावरण पवित्र, कठिन है !

●

राजनीति में मित्र, कठिन है;
स्व से उठा चरित्र; कठिन है,
किसी जुआड़ी के अड्डे पर
वातावरण पवित्र, कठिन है !

●

वसन्त पंचमी
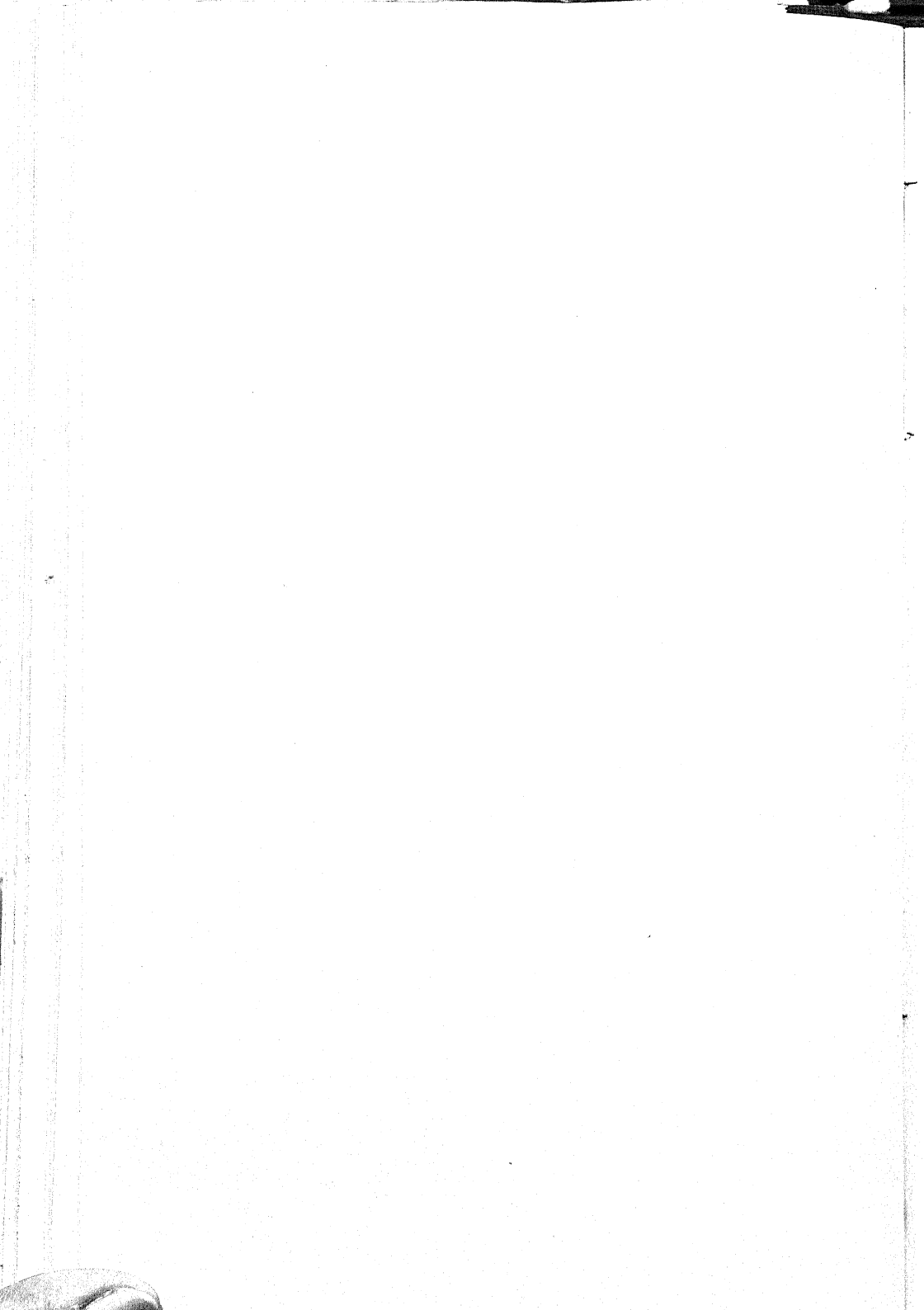
सुरभित पावन आज
वसंत पंचमी का दिन
गली - गली में सजा
शारदा माँ का पूजन !

तड़के से ही जुटे हुए हैं
मस्त मगन मन
ले अबीर झोली में अपनी
क्या छोटे, क्या बड़े छात्रगण !

क्या चन्दे की रकम
ज्यादती से आयी है ?
बाँस लगाकर. सड़क रोककर
माल बना है ?

क्या पीने-खाने की कुछ
है खास व्यवस्था ?
क्या पूजन फूहड़मस्ती
का ढाल बना है ?

अरे मूर्त्ति यह माँ की
है या अभिनेत्री की ?
या कि नर्त्तकी की तुम
ले आये हो प्रतिमा ?

अगर तुम्हारी जननी
घर में रूप धरे यह ?
क्या न तनिक शरमाओगे
उसको कहते माँ ?

मूर्त्तिकार की पावन रुचिका
परिचय दो तुम !
माँ का दिव्य स्वरूप तभी
वह ढाल सकेगा !

जनता की मनोवृत्ति
कला में विकसित होगी
सस्तेपन का तभी
दुखद बाजार रुकेगा !

वीणापाणि कि सिंहवाहिनी दुर्गामाता
सभी शक्ति की अमिट स्रोत हैं !
युवक-युवतियों से गुंजित इस विश्व के लिए
वे ममता से ओत-प्रोत हैं !

पहचानो वह रूप वन्दना खेल नहीं है
वीणा को साधो, पुस्तक से करो मित्रता !
ब्रह्मचारिणी, ब्रह्मरुपिणी, सर्वमन्त्रमयि
दूर करेगी सहज तुम्हारे मन की जड़ता !

●

वरदात्री
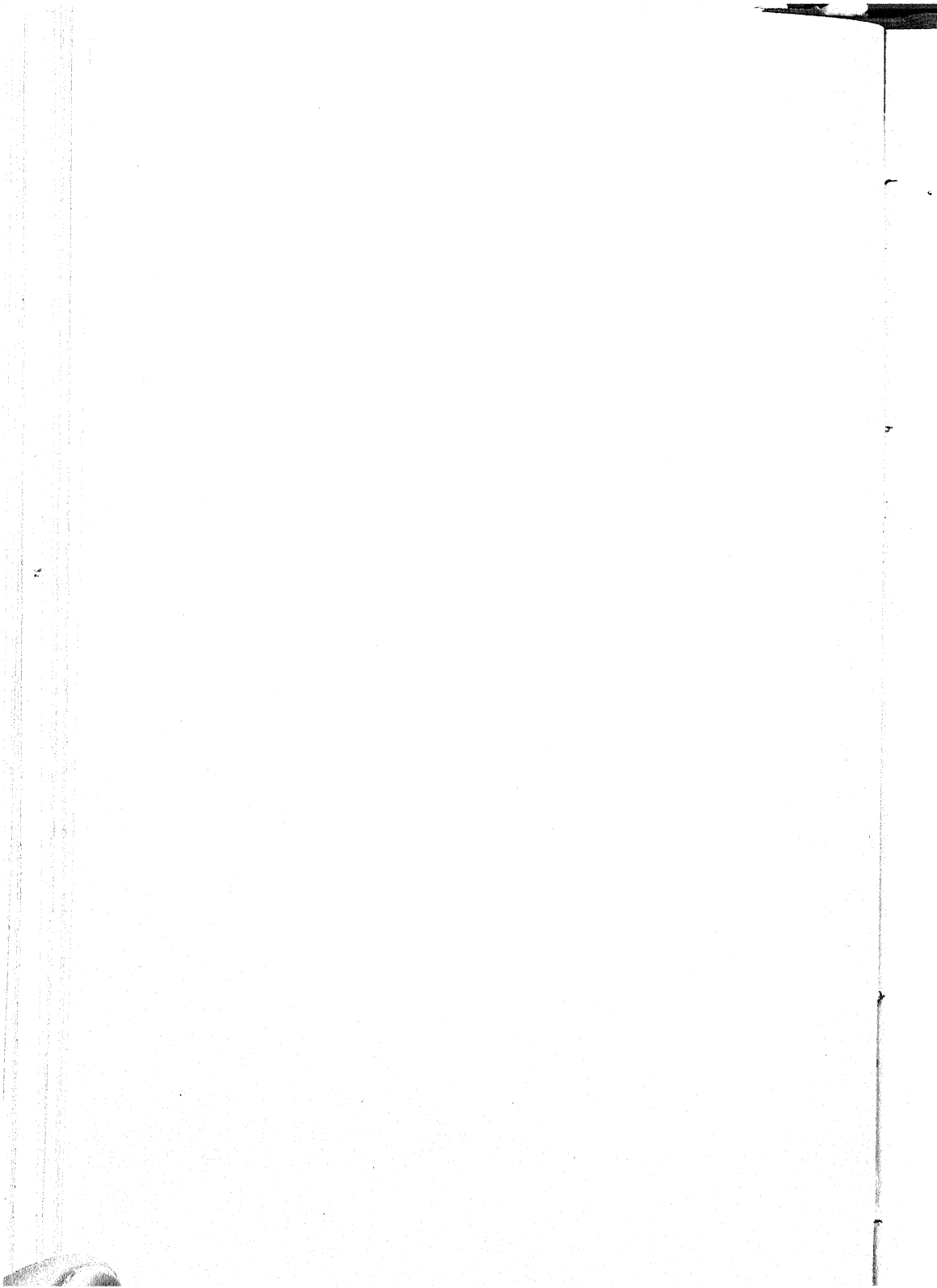
नील वसन धारो श्वेताम्बरि !
हो जग का कल्याण !
मूक-बधिर को सही शब्द दूँ,
दो ऐसा वरदान !

यह संसार विराट जेल-घर,
तड़प रहे हैं जहाँ चराचर !

मुक्त धरा, उन्मुक्त गगन
से करो विश्व उद्यान !
नील वसन धारो श्वेताम्बरि
हो जग का कल्याण !

बाहर-भीतर नहीं युद्ध हो !
शब्द अर्थ दोनों विशुद्ध हों !

ज्ञान सम्बलित भाव रहे
फिर भावसिद्ध विज्ञान !
नील वसन धारो श्वेताम्बरि
हो जग का कल्याण !

नील रंग विस्तीर्ण गगन का !
नील रंग है सरित गहन का !

नील रंग में इसीलिए हैं
राम-कृष्ण के ध्यान !
नीलवसन धारी श्वेताम्बरि
हो जग का कल्याण !

विद्या लम्बाई - चौड़ाई,
साथ-साथ पूरी गहराई !

वरदात्री शारदा इसी से
लिये नील परिधान !
नीलवसन धारी श्वेताम्बरि
हो जग का कल्याण !

सूरज चाँद सितारे गायें !
भू पर मानव प्यारे गायें !
गूँज उठे माँ सरस्वती की
जय का मंगल गान !
नील वसन धारी श्वेताम्बरि
हो जग का कल्याण—!

उज्ज्वल सभी वर्ण का मिश्रण !
नील श्वेत का हो अन्वेषण !
सातों रंगों का माँ उनमें
होता पर्य्यवसान !
नील वसन धारी श्वेताम्बरि
हो जग का कल्याण !

●

समन्वय
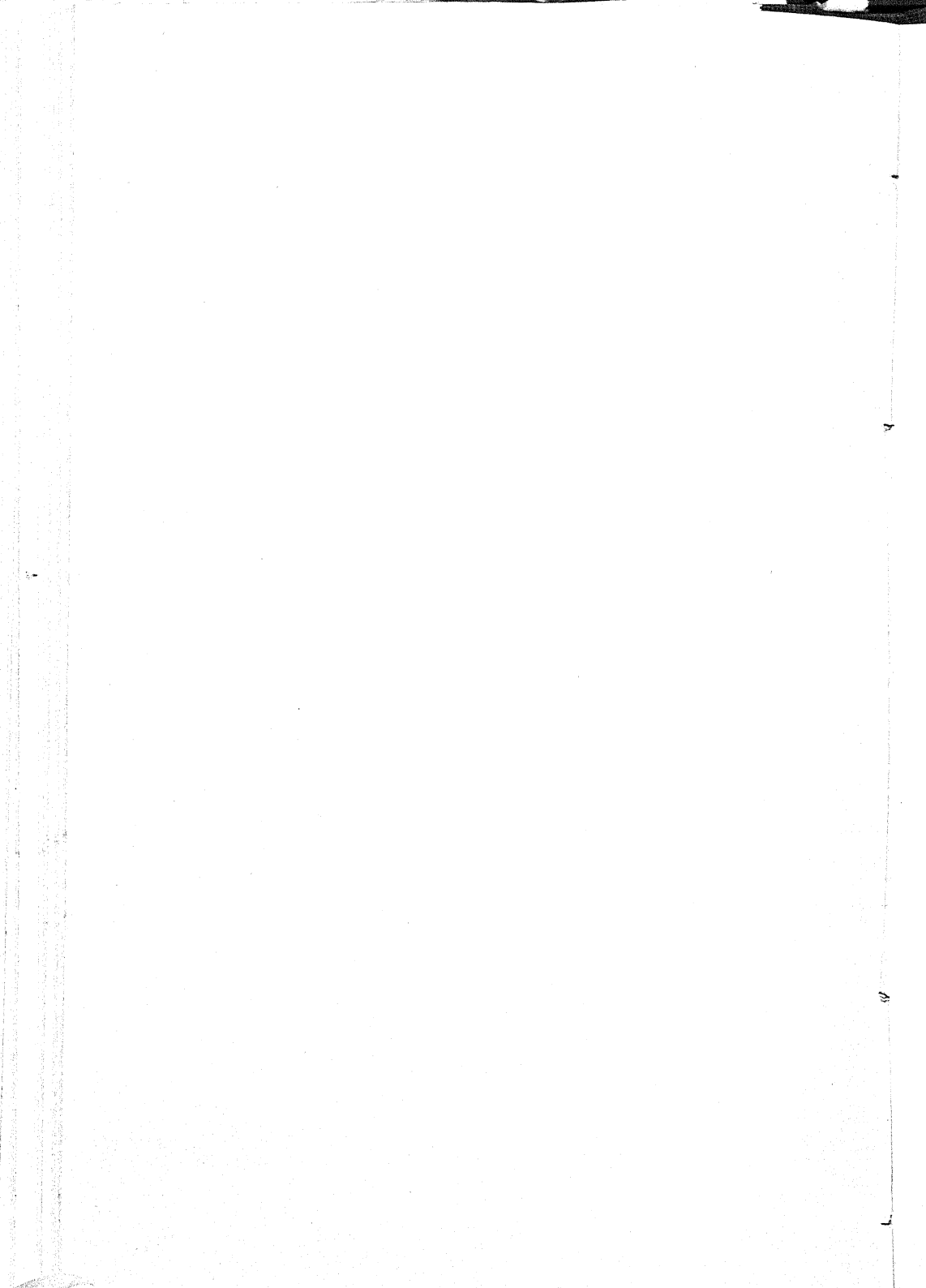
बुद्धि बड़ी या भाव बड़ा है ?
लेख बड़ा या गीत ?
आकर्षित मन विवश सँभाले,
तर्क करे या प्रीत ?

बहुत बढ़ा विज्ञान—
चन्द्रमा, मंगल ग्रहतक पहुँचा ।
लेकिन भाई से भाई का
दिल मिलने में सकुचा !

बहुत दूरियाँ तय कीं हमने
मिल न सके पड़ोसी,
पाकर धन, बल, अमित,
यहाँ है कौन तनिक संतोषी !

दैहिक भोग करोड़ों
लेकिन सुख कितना दे पाये ?
विजय, विजय फिर विजय—
दर्प पर क्यों कुंठा बन छाये ।

क्यों शराब का नशा
मिटा पाता न किसी के गम को ?
क्यों जग का ऐश्वर्य बाँट
पाता न विरक्ति विषमको ?

कृपा करो धीश्वरो,
बुद्धि का करो भाव से मेल !
बुद्धि शुष्क मिट्टी का दीया,
भरो भाव का तेल !

गुणाश्रये ! मस्तिष्क हृदय को छोड़ न भागे !
ऊपर बढ़ता वृक्ष, धरा का मोह न त्यागे !

●

रक्त बीज
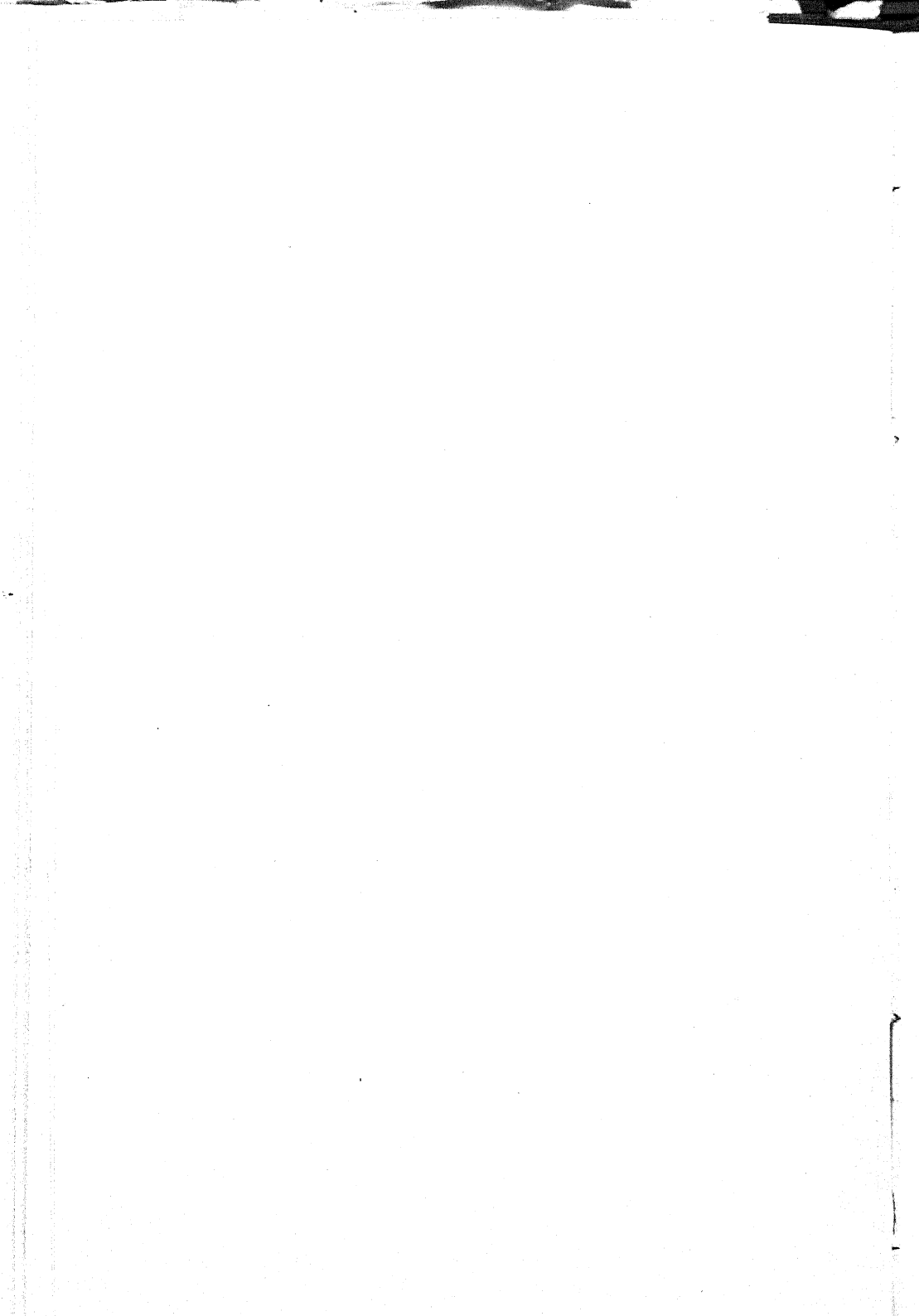
महाविद्या ! अविद्या का
यहाँ सर्वत्र ही साम्राज्य है !
महावाणी ! अशोभन बुधजनों
के हित न कुछ भी त्याज्य है !

महास्मृति ! भूलते हम जा
रहे गौरव पुरातन हैं !
महामेधा, करोड़ों भ्रान्तियों
से भरा जीवन है !

यहां विद्वान जो जितना
अहम् उनमें अधिक उतना ।
यहाँ ज्ञानी बड़ा जितना
वहम उनमें अधिक उतना !

यहाँ वाणी खनकती चाँदियों
पर फिसल जाती है !
यहाँ विधि व्यक्ति के सम्पर्क-तपसे
पिघल जाती है ।

रक्त-बीज ये बुद्धि के
फैले चारोंओर !
आज नाश के दमन से
महानाश का जोर !

करता तेज प्रहार
रक्त का गिरता है जो बिन्दु,
उमड़-घुमड़ कर पुनः वह
बनता जैसे सिन्धु ।

बन रहा महापाप का जनक,
पाप का अंश प्रतापी प्रबल !
न्याय कैसा ! कहते हैं लोग,
'रक्त से सने हुए को धवल !'

जगद्‌धात्री, जब तक तुम नहीं
कालिका का ले लोगी रूप,
सघन बदली में दुर्दिन को
नहीं चमकेगी स्वर्णिम धूप !

तुम्हीं दुर्गा, चामुण्डी तुम्हीं
तुम्हीं हो सिंहवाहिनी माँ !
तुम्हीं हो विश्वेश्वरी महान
तुम्हीं हो शक्तिदायिनी मां !

महाप्रज्ञा जब तुम हो माँ,
सिद्ध है रक्तबीज का नाश—
बुद्धि के रक्तबीज का नाश !
कटेगा महामोह का पाश !

●

विश्वात्मि के
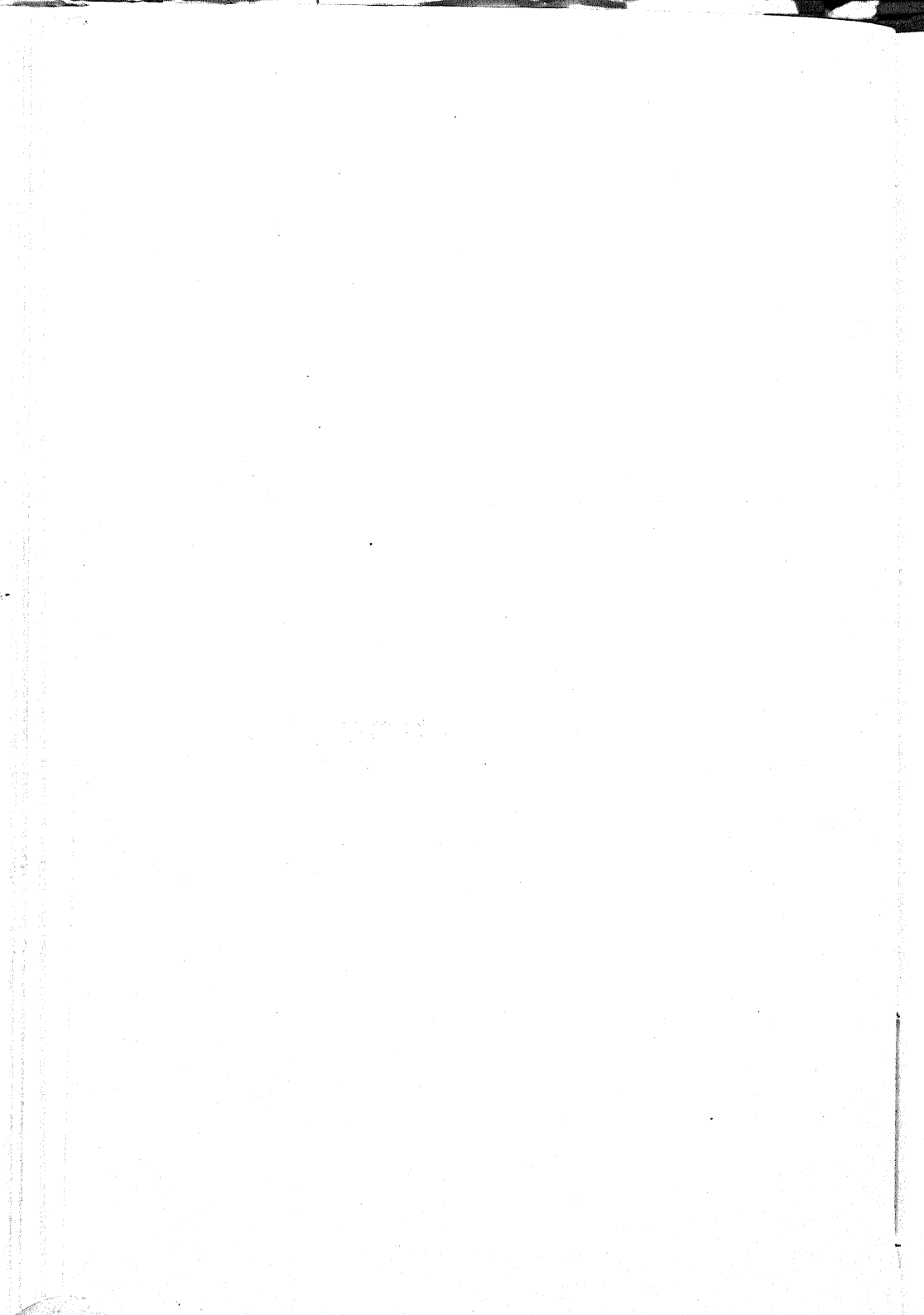
कविपालिके ! तुम जानती
मेरे न क्या मन को व्यथा ?
जो शब्द में दूँ व्यक्त कर
इस विश्व को अनगढ़ कथा ?

तुम शब्द सकला रुपिणी !
तुम हृदय मध्य निवासिनी !
तेजस्विनी ! विश्वात्मिके !
तुम सर्ववाक्य सुभाषिणी !

है क्या छिपा तुम से ?
प्रकट तुममें नहीं है क्या यहाँ ?
शुभ सिद्धि क्या जग को, निकट
तुमसे नहीं है माँ यहाँ ?

फिर भी जैसे दीप सूर्य को दिखा उतारें आरती,
हम भी तुमको कुछ कहते हैं गीर्देवी, हे भारती !

●

सत्यकाम जाबाल
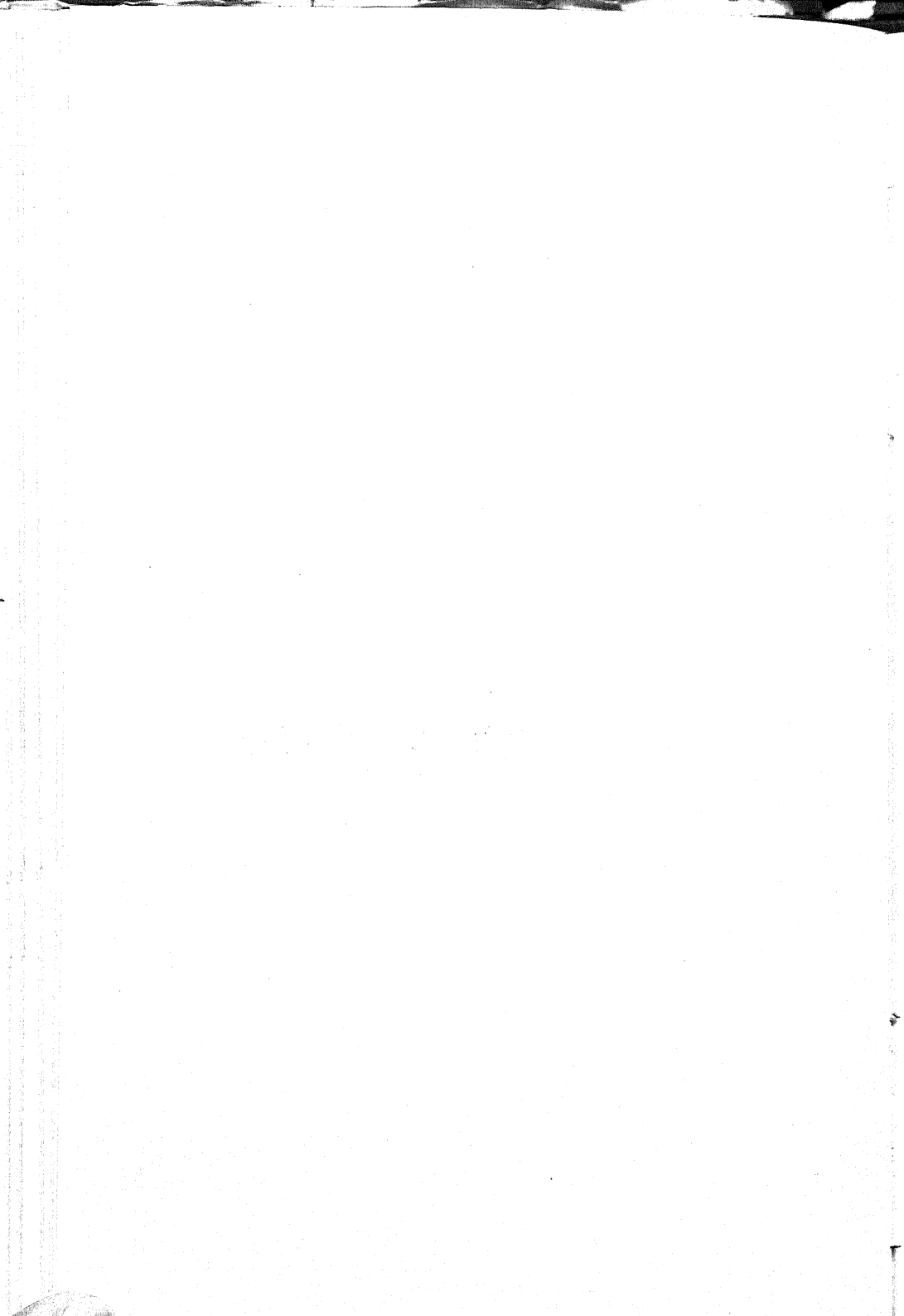
वाग्वादिनी सबकी माता
पुरुष हो कि हो नारी !
ब्राह्मण हो या हरिजन हो
या हो कि पुरुष अवतारी !

जो माता के मन्दिर तक
जाने में रचता भेद,
पापी, जातिभेद करने में
जो न मानता खेद !

सरस्वती तो गंगा माता
सबके लिए सुलभ है !
जो जितना रस चाहे ले ले
किसे रोकती कब है !

निष्कलंकिनी, वायु सदृश तुम
सबके जाती पास !
जो चाहे, जितनी भी भरले,
उससे अपनी साँस !

सर्वमङ्गला सत्यकाम पर कृपा अनंत तुम्हारी !
सखा ! तुमने समझी नन्हे साधक की लाचारी !
निर्धन माँ का पुत्र ज्ञान की लेकर अमिट पिपासा,
गौतम गोत्र महर्षि के निकट पहुँचा लेकर आशा !

हारिद्रुमत ने कहा, 'वत्स हैं पिता तुम्हारे कौन' !
छोटा बालक प्रश्न श्रवणकर शान्त रह गया मौन !
पहुँचा माँ के पास, प्रश्न सीधा सा लेकर,
किन्तु जबाला की खातिर था टेढ़ा उत्तर !

सब ऋषियों की करती सेवा
किसे कहे वह जनक ?
नाटककार अजान, किन्तु
है सत्य लिखा यह रूपक !

जगा जबाला के मन मे
जगमग साहस का दीपक
"सब कुछ वही, वही जननी है
और वही है जनक !"

सत्यकाम ने गुरु से जाकर
कहा सत्य सन्देश !
पाकर सत्य - स्वरूप
शिष्य का दिया उसे उपदेश !

हे कुमारिके ! महातपा माँ सत्यकाम जाबाल—
कृपा तुम्हारी पाकर निकला तत्त्वज्ञान से पूर्ण !
मन को ही परब्रह्म मानने वाला यह आचार्य
जाति, वंश के अहंकार को सहज कर गया चूर्ण !

सरस्वती माँ नहीं बन्दिनी महलों में, कुटियों में,
नहीं किसी भी जाति, यौन में रहनेवाली बँधकर !
कर्षण नहीं रूप की खातिर, मुक्त हृदयवाली हैं,
ब्रह्मचारिणी, भक्तिभाव पर होती हैं न्योछावर !

शुद्ध हृदय से जब भी करो पुकार,
बज उठता है वाङ्मयी की वीणा का हर तार !

●

विश्वरथ

सरस्वती माँ नहीं बन्दिनी महलों में, कुटियों में,
नहीं किसी भी जाति, यौन में रहनेवाली बँधकर !
कर्षण नहीं रूप की खातिर, मुक्त हृदयवाली हैं,
ब्रह्मचारिणी, भक्तिभाव पर होती हैं न्योछावर !

शुद्ध हृदय से जब भी करो पुकार,
बज उठता है वाङ्मयी की वीणा का हर तार ।

●

विश्वरथ
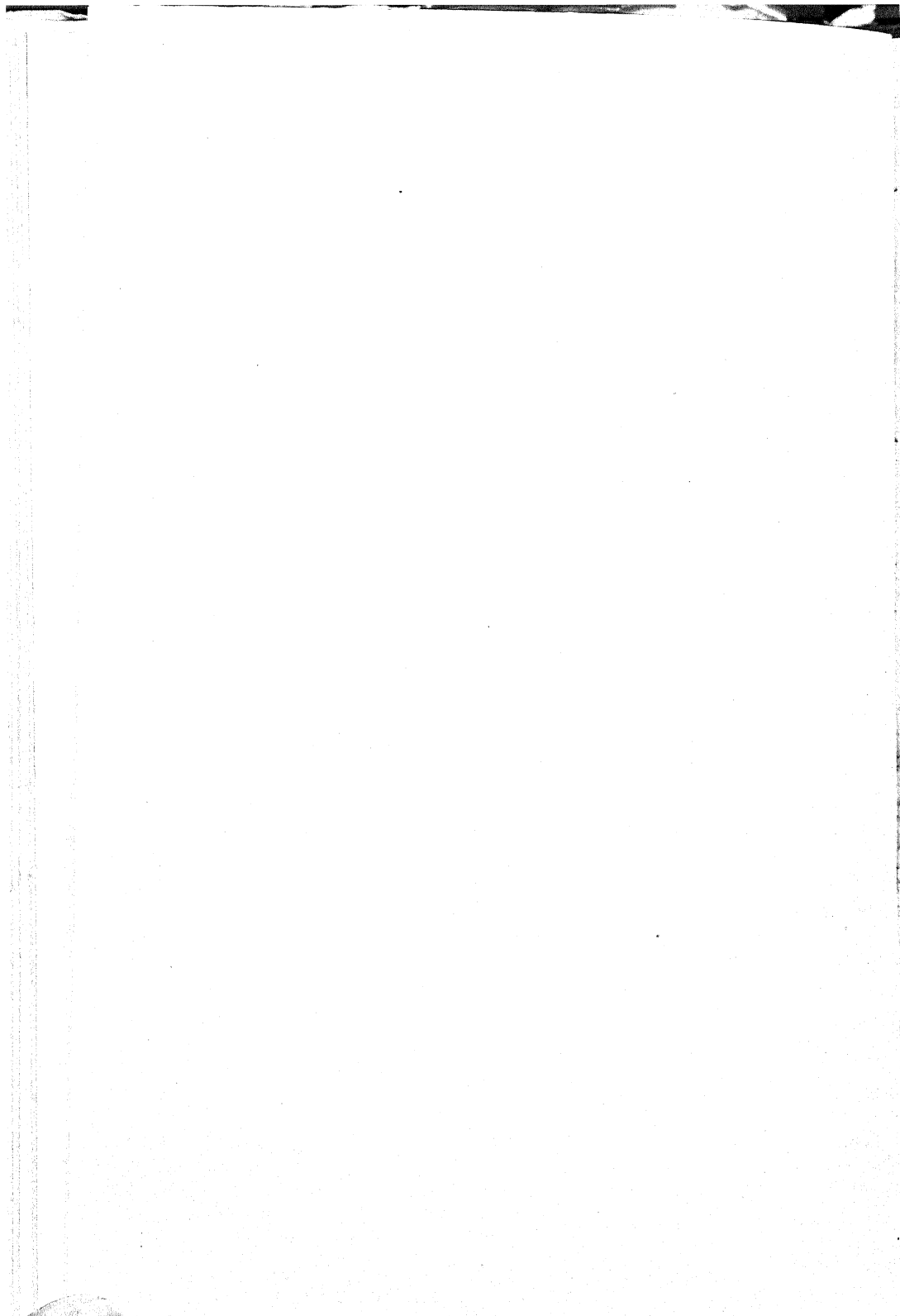
साधना अन्तःसलिला
ही होती है सरस्वती !
तुम्हारी नियति ही
हमारा सौभाग्य है !
वरना अगस्त सागर को
चुल्लू में पीने का
साहस कर सकता था ?

होता नहीं है ज्ञान
हस्तामलक किसी का !
बुद्धि किसी वंश की
न दासी रही !
मिट्टी से चुपके
किसी अश्वत्थ की तरह
जोरदार खड़ा हो जाता
तुम्हारा दुलारा कवि !

अन्तःसलिलाएँ ही श्रम से
भींगने पर होती हैं प्रकट
वे ही किसी साधना को
करती पुरस्कृत हैं ।

ऊपर - ऊपर बहकर
सरस करनेवाली नदियाँ
बाढ़ लाकर करोड़ों को
उजाड़ भी देती हैं।

अन्तः सलिलाएँ केवल
करती निर्माण हैं,
किसी भी क्षण
उफनती नहीं, उबलती नहीं!
साधना में सागर की
होती गंभीरता है।
इसीलिए तुम्हारे ही
तटपर एक अद्भुत पुरुष
योगी बनकर बैठा था
करने तपस्या!
जन्मना जो क्षत्रिय था—
रागी था, राजस् था!
बनने को ब्राह्मण वह
कृत संकल्प हो उठा!

राजर्षि ब्रह्मर्षि हो—
भोग योग बन जाये!
सोना बन ज़ाये
पिघलकर विभूति !!!

अपने युयुत्सु,
विजिगिषु, क्रान्ति दृष्टि से
मानव कर सकता है
कोई रुपान्तर !
मानव ही बनता है
ब्रह्मा, ब्रह्म मानव !
'विश्वरथ' तुम्हारे ही तट पर कर साधना
'विश्वामित्र' बन गया !
विश्वामित्र अन्तः सलिला होने पर भी
पहचान रखता था निश्चित तुम्हारी
ज़ानता था क्रान्ति द्रष्टा—
अन्तः सलिला उगाहे बिना
इच्छित न हो सकता
कभी भी ज़न-कल्याण !

वाणी जन-कल्याणी
ज़ग की रसज्ञा है !
समता की क्षमता से
पगी देवमाता है ।
श्री, स्तुति, स्मृति भी है !

सोचा विश्वरथ ने
विश्वामित्र बनने के लिए
कुछ तो महाश्वेता को
चरित्र–बल दिखाना है।
रस के अनुकूल पात्र
होना तो चाहिए!

जाति–पाँति वर्णों में
बँधी चिन्तनधारा को
झटके से एक नया
मोड़ देना चाहिए।
समता की देवी
वर्णमातृका गिरा के लिए
ब्राह्मण क्या, क्षत्रिय क्या,
शूद्र क्या, अन्त्यज क्या?

सम्बरज़ा उग्रा को ग्रहण
किया कौशिक ने
शुनःशेप उसका ही
एक आत्मज्ञान था !
बिना देहान्तर के
वर्णान्तर करने वाला ही
उठा सकता था
ऐसा क्रान्तिकारी कदम !

लेकिन तुम्हारा सारस्वत ज्ञान
उस समय प्रकट हुआ
जब तुमने अपने
उपेक्षित इस पुत्र को
'देवरात' कर दिया !
दे दिया ज्येष्ट स्थान
पुत्रों के बीच अपने
और इसको, करने
वालों को उपेक्षा
शुनःशेप की माँ की
जाति में ढकेल दिया !
सिद्ध किया—
'वर्णभेद मानना है कदाचार !'

•
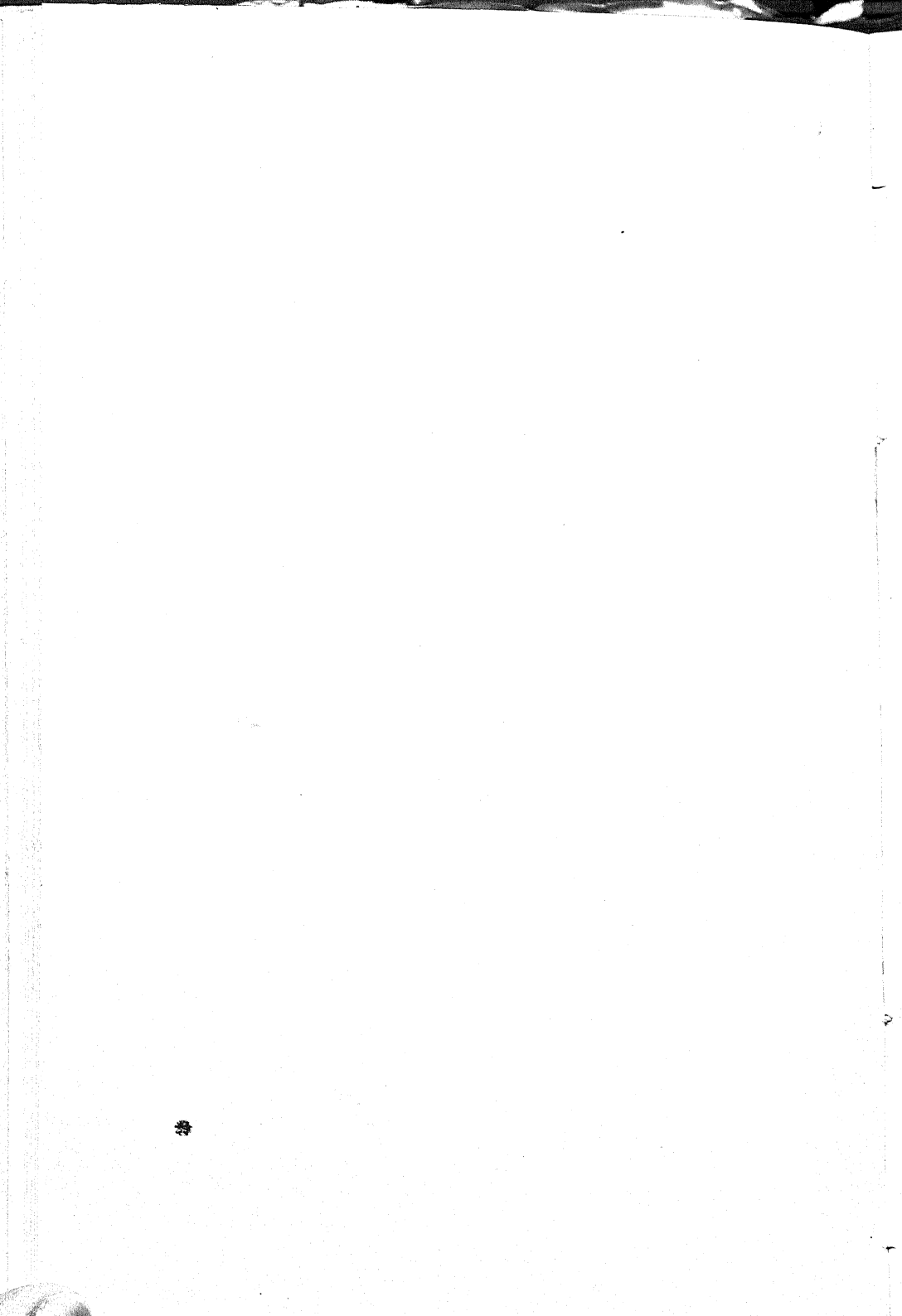
सृष्टि के मूल में सजल ही सज़ल है
ठोस बनी धरती भी
कभी थी विराट तरल !
धरती का मूलाधार
आज भी तरल ही है—
धरती का अधिकांश
पानी ही पानी है
धरती के ऊपर भी
बनते हैं मेघ ही !!!

इसीलिए मानव
आतंकित था इन्द्र से !
जल को मान देवता
सजल करुण और हुआ।
कारण यही था जब
हरिश्चन्द्र ने विगलित
वरुण देवता से माँगा
एक पुत्र अपने लिए !
दान भी कैसा था वरुण
का करुण ?—
'पैदा होते ही तुम उसे
मुझको बलि दे देना।'

यानी, निःसंतान होने का
मिटाना कलंक ही केवल अभीष्ट था !
वरुण ने नहीं सोची
वात्सत्य की गरिमा !

'रोहित' हरिश्चन्द्र का
पुत्र हुआ पैदा !
जैसे-जैसे पुत्र बढ़ा,
मोह बढ़ता गया !
बलि नहीं देने से
हो गया जलोदर रोग
पिता हरिश्चन्द्र को;
पुत्रा किन्तु अपने
प्राणों का मोह जानता था,
बलि के भय से वह
गया भाग जंगल में;
पुत्रा को पिता की चिन्ता,
अपना भय सालता रहा
सो उसने अजीगर्त्त से
खरीद लिया प्रतिपालित
पुत्रा—शुनःशेप को;
वही शुनःशेप जो कि
पुत्रा विश्वामित्रा का था !

शुनःशेप = कुत्ते की दुम !
—आदमी को पशु की अवज्ञा !

जगता है पौरुष
जब दूसरे करते हैं अपमान
अपने किसी गोत्र का !

बलिस्तम्भ में बँधा शुनःशेप
बलि पशु जैसा ही बिल्कुल असहाय !
—पिता ने ज्यों जन्म देकर

मुक्ति दे दी !
प्रतिपालक अपनी
सेवाओं का ज्यों पाकर मूल्य
मौन हुआ !

—लेकिन क्रान्ति द्रष्टा ने
इस बलि को रोक दिया !
विश्वामित्र ने सहज
अस्वीकारा वरुण को !
शुनःशेप मुक्त हुए;
इंद्र शप्त तत्क्षण जलोदर गया !

ऐसे समय में काम
आयी शक्ति गायत्री !
माता सावित्री
तुम्हारा रूप गायत्री !
गायत्री मन्त्र का
जाप किया' शेप ने,
मुक्ति उसे सहज़ ही
मृत्यु योग से मिली;
श्रेष्ठ पद, राज्य मिला
और कुल मान भी,
जिसका अधिकारी था !

गायत्री मन्त्र केवल धी को प्रतिष्ठा है !
ज्योति के स्वरूप में पूर्णमान निष्ठा है !

छोड़कर गिलगिलापन जीवन का,
लचीलापन, आर्द्रता, सिमसिमाहट,
पिच्छल-भरा पथ, सविता को आराधो !
वही ज्योति देवी है—
नयी शक्ति, ऊर्जा और
देती प्रकाश है !

ज्ञान ही प्रकाश है, वही है प्रज्ञा,
वागीश्वरी, गी, वाचा—शारदा माँ !
गायत्री रचकर महर्षि विश्वामित्र ने
विश्व को सरस्वती का
अमोघ मंत्र दे दिया—
वरुण के पाश से
मुक्ति दी समाज को !
लिजलिजेपन से छूट दी !
पंकिल बने जीवन को
सविता का गर्भ-नर्म
प्यार दिया व्यापक !
ठोस बनने की दिशा में
किया उत्प्रेरित !

ज्योति ही सरस्वती है !
अँधेरे पर अज्ञता के
फैलता जो किरण सप्तक
वही उसकी वीणा की झंकार !

रुदन को हास में परिणत करो
वरुण अश्रु देता है, सविता सुहासिनी है !
धी की अन्वेषणा ही सविता है—
ऊष्मा ! अमित ज्योति पुंज है !

इला
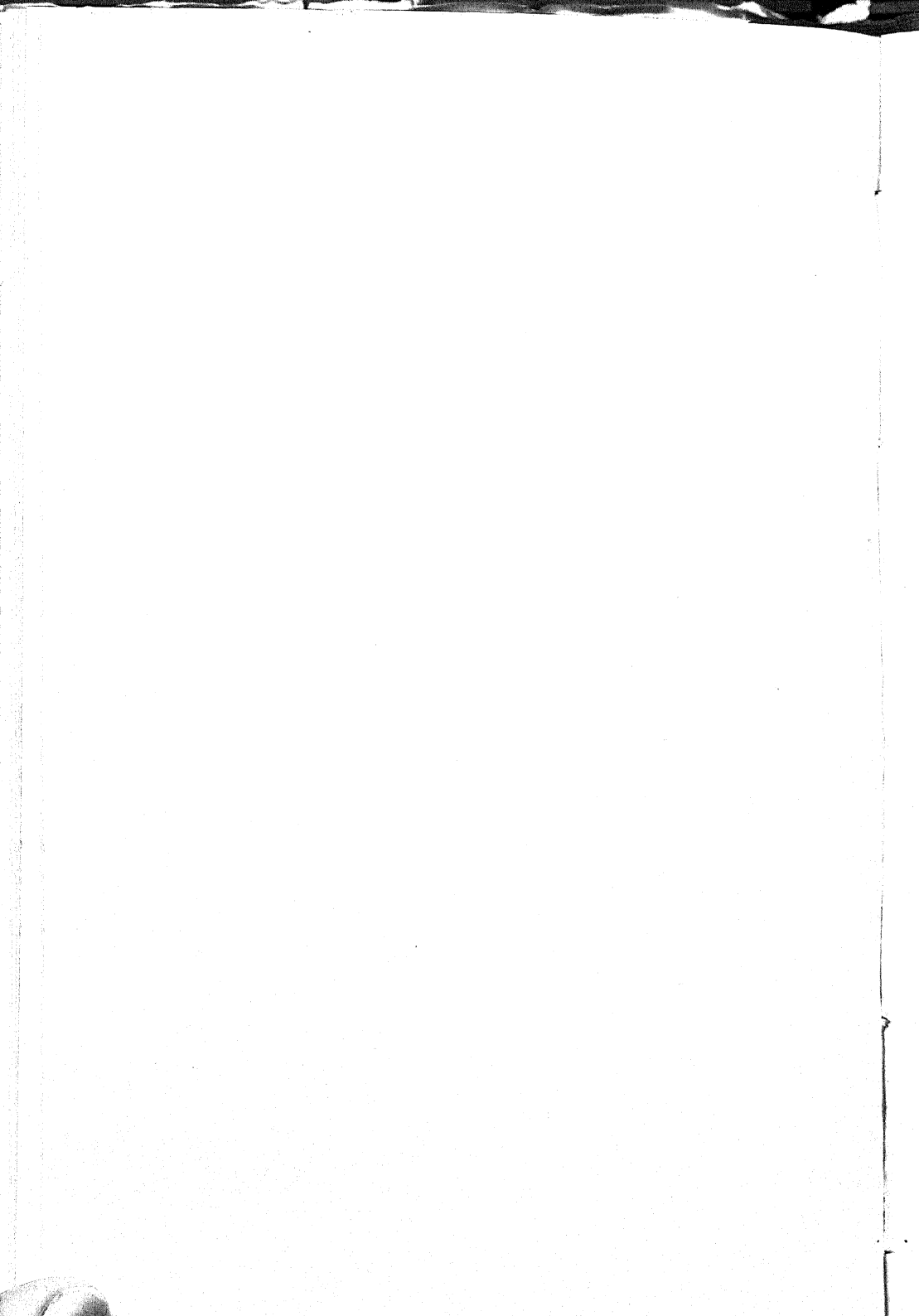
प्रश्न क्या है ?

जिसका

विकल करने को समाधान,

यज्ञ किये जाते हैं ?

कैसी, किस चिन्ता ने

ब्रह्मा से मनु तक को

हर दम अशान्त किया ?

कैसी, किस दुविधा ने

मानव को बनने

न देव दिया और नहीं दानव !

कौन सी वह शक्ति थी कि

जिसने विकल्पात्मक रूप

व्यग्र धारण कर ध्वंस किया,

और रूप ग्रहण कर संकल्पात्मक

करती रही है सतत

निर्माण, कल्याण ?

—वही –धी' जिसको कि ब्रह्मा ने

जन्म दिया और रहे पाने से !

वैवस्त मनु ने पुत्रेच्छा से

किया मैत्रावरुण याग

और उससे निकली यही इला !—धीकास्वरूप

लेकिन मनु भी उसे बेकल अपनाने को
अपने पास रख न सके !

इला जो सरस्वती है,
ज्योति-स्वरूपा है—
सर्वोपरि नमन्य है !

इला प्राप्त हो सकती
केवल हैं बुध को !
बुध जो कि शीतल
प्रकाशदायी चंद्र का सुपुत्र है !
चन्द्रमा जो निकला है
सागर के मंथन से।
ज्योति पैदा होती नहीं
हुए बिना मथित कभी।
और कभी ज्योतिहीन आत्मा से
सही बुद्धि विकसती नहीं !

इला न स्त्री है न पुरुष—वह दोनों है
दोनों ही यौनों के लिए सहज वरेण्या है !
सरस्वती माँ का प्रसाद
स्त्री पुरुष दोनों को
सहज रूप प्राप्य है।

उसका भेद करते जो
वेही अधर्मी हैं !
इला ने इसीलिए
यौन-परिवर्त्तन किया !
स्त्री रूप इला हो
पुरुष रूप सुद्‌युम्न बनो !

इला बनी कोमल भी, कठोर भी !
बुद्धि के उपादेय होने को
दोनों रूप सहज है।
उसमें मित्र का है तेज
वरुण की है आर्द्रता
और साथ-साथ है
अन्तर्द्वन्द्व मनु का !

द्वन्द्व यही मानव को
मानव बनाता है—
द्वन्द्व यही जीवन को
नयी दिशा देता है !

पुरुरवा—से कामाकुल
द्वन्द्व पीड़ित को माता
को क्षमता मिलती इला में ही है !
उसका व्यक्तित्व जो
विमर्शात्मक, तर्कप्रवण

और द्विधा से विभक्त !
द्वन्द्व उत्पति की
संतति के अनुक्रम में सहज़ प्रतिफलित हुई।
नारीत्व बुद्धि का
उसके ही सूर्योपम तर्कों के पौरुष से
अनुशासित होता है,
उसके दृढ़ शील का काठिन्य भावों की
मदिरा से मादक बन ज़ाता है !
परिणति है मन की,
यह मनु के विभाजित ही।

चन्द्रवंश सूर्यवंश—चन्द्रकिरण शीत
और प्रखर ताप सूर्य का
दोनों से होकर समन्वित
इलापूर्ण हुई—पूर्ण ज्योति रूप हुई।

पाने को धी को विकल
ब्रह्मा से मनु तक हैं
लेकिन पाता तो उसे
कोई बुध ही है सदा !

साधक सुरसती-तट का
कोई विश्वामित्र ही
इस धी के मर्म को ठीक-ठीक जानता है !
तेज़ मित्र का उसमें,
वरुण-पाश-मोचन की, क्योंकि,
मिली प्रज्ञा है।

बुद्धि अग्नि है, वैश्वानर है,
अतः कृपा पाने को धी को
नहीं इन्द्र को, सविता की करनी है बन्दना !
और तेज की करनी होगी अर्चा-पूजा !
भाव बंध से तरल वरुण के,
पाश कठिन से
मुक्ति दिला सकती सविता-मूला धी को
बस गायत्री ही !

शुनः शेप कोई भी जग का
जब बनने लगता भावों की बलिवेदी पर
है नैवेद्य वरुण का बेकल,
प्रखर तेज से दीप्त मित्र के
उसकी होती समुचित रक्षा।
मर्म मंत्र गायत्री का है
धी–सविता की ज्योति का पता।
युग का विश्वामित्र कदाचित
रहता है उस एक इला की ही तलाश में,
जो कि वरुण की नहीं;
मित्र की ही हो अपनी।

मारक भींगा पाश
ज्योतिमय बुद्धिवाद के लिए !
गाधिपुत्रा की धो अन्तर को इस दुविधा से
है उबारना और उबरना सदा चाहती !

माँ शुक्ला की शुचिता, शोभा, भाव-प्रवणता
और सुलभ नारी के उसके अन्य-अन्य गुण
उसके घर्षण, कर्षण; पीड़न के ही कारण !
मित्र वरुण की दुविधा से पाने पर निष्कृति
हो ही जाता पुरुष कल्प है रुचिर इला से
विवस्वान-आदित्य वंश का शुभ विस्तारण !

कोमलता के ललित गुणात्मक
परिवर्त्तन के द्योतन से ही
बुद्धिवाद निर्द्वन्द्व शुभ्र का रूप अकलुष
होता है इस जगती तल में सहज-प्रस्फुटित ।

●

गायत्री

आदमी जब संशय से घिरा हो,
आत्मा को उठानेवाली गिरा हो !

असुरों से सदा ही लड़ती रही तुम,
सच्चे अर्थों में देवगृही तुम !

वज्रमय रूप होता है धन का !
पद्मलांछना ही होती है पावका ।

महाश्वेता, भगवती, भारती, तू ही है ब्रह्मपुत्री
तू ही ब्राह्मणी !—
सही अर्थों में क्योंकि तुम्हारे भीतर है सम्पूर्ण
मानवता के लिए सहानुभूति घनी !

वर वर्णिनी ! तुम वर्णमातृका, तुम वाक्येश्वरी ।
क्यों कि तुम अभिव्यक्ति विमला दिव्य अर्थोंभरी !
अनृत का स्थापन ही साहित्य की हत्या है !
सन्ध्येश्वरी शुक्ला है, क्योंकि सत्या है !

शक्ति से निकलने वाले
स्वार्थ-पूर्ति के अनुपात में
झुकती हैं आदमी की कमर,
झुकते हैं जुड़े हुए हाथ !
श्रद्धा हमेशा रहना
चाहती हैं सनाथ !
वह श्रद्धा कहाँ ?
जो पैदा कर दे भगवान,
जो देवमय कर दे पाषाण !

इसीलिए यदि चाहिये
विश्व-मानवता का कल्याण,
पाना होगा संकल्पात्मक
बुद्धि का वरदान !

नीर-क्षीर विवेकी ज्ञान ही आज
सुरो-असुरों का भेद कर सकेगा !
बुद्धि-प्रवण गीता-तत्त्व ही
हृदय का कुरुक्षेत्र लड़ सकेगा !

असत्य की चकाचौंध से
अन्तर्दृष्टि मलिन करनेवाला,
अज्ञान का भयानक धूम्रलोचन
निःशंक सिंहवाहिनी से ही मर सकेगा !

मातृका, तू महातपा है, इसीलिए महातेजा है !
ज्योति आत्मा में जगाने को तुमने कवियों को भेजा है !

इड़ा गायत्री तू परमेष्ठिनी है,
इस युग के त्रिताप की महौषधि है !

हे वैधात्री, तू वाग्देवी बनी
कलि में भी सतयुग की अवधि है !
मत्स्याक्षी, शिल्पकारिके, हंसवाहिनी, वीणावती !
महादेवी, तपस्या के कारण अपर्णा सी तू वीरा सती !

यह सरस्वती काव्य का अन्त
वाणी का वितान है,
जैसे कोई बीज
पौधा बना है,
अभी तो क्रम चलते रहना है—
फूल से फल का, फिर बीज का।
वाणी का अन्त होता ही नहीं!
वह अनन्त है! शाश्वत है!
उसका संयोजित रूप भी अक्षर है
—अविनश्वर है!

वाणी माँ की वन्दना
विश्व-मुक्ति की कामना है!
ज्योति की अभ्यर्थना है!
लक्ष्मी के लाड़लों की दुनिया में
सरस्वती का गीत गाना
कैक्टस के जंगल में है
केसर उगाना!

श्रद्धा आज लूली-लंगड़ी और बहरी है!
वह भी मुखौटेवाली है—असली नहीं, नकली है।

श्रद्धा निर्द्वन्द्व समर्पित होना सिखलाती है !
वह आँख रहते अंधा बना देती है !
वह बिना चप्पू और पाल के
हवा की कृपा के भरोसे नाव खेती है !

आज श्रद्धा को दो सहज ही नहीं
तीसरी विशेष दृष्टि की आवश्यकता !
वह प्रज्ञा के तृतीय नेत्र से पहचान कर सकेगी !
पहचान का ज्ञान ही उसने खो दिया है !
अपने हाथों अपने जीवन में विष बो दिया है !

अंधे को प्यार करो तो
कमल नयन मानकर नहीं !
निर्धन को मान दो
तो किसी लोभ से नहीं !
किसी शत्रु को मित्र बनाओ
तो किसी क्षोभ से नहीं !
श्रद्धा को प्यार से सुहागिन करो !
बुद्धि का दहेज दे बड़भागिन करो !

जिसकी कृपा से जाता
पत्थर पसीज है
वही ब्रह्म बीज है !

ब्राह्मी, तुम सृष्टि हो, स्रष्टा हो !
कवियों की दृष्टि हो, द्रष्टा हो !

जिह्वा पर बैठो
तुम वर्ण हो !
समता की माता—
न सवर्ण हो, न अवर्ण हो !

प्रखर तेज़ धी ज्येष्ठ है,
श्रद्धा के मेघ से सावन मनभावन करो !
श्रद्धा के मेल से ज्ञान को
ज्ञान के मेल से श्रद्धा को—
परस्पर पावन करो !

●

जिसकी कृपा से जाता
पत्थर पसीज है
वही ब्रह्म बीज है !

ब्राह्मी, तुम सृष्टि हो, स्रष्टा हो !
कवियों की दृष्टि हो, द्रष्टा हो !

जिह्वा पर बैठो
तुम कर्ण हो !
समता की माता —
न सवर्ण हो, न अवर्ण हो !

प्रखर तेज़ धी ज्येष्ठ है,
श्रद्धा के मेघ से सावन मनभावन करो !
श्रद्धा के मेल से ज्ञान को
ज्ञान के मेल से श्रद्धा को—
परस्पर पावन करो !